कुरुक्षेत्र

फरवरी 1989

पंचायती राज ने ग्रामीण लोगों में एक जागरूकता जगाई है जिसके फलस्वरूप वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गए हैं और अपने रहन-सहन के स्तर में सुधार करने की अपनी इच्छा-शक्ति को विकसित कर सके हैं ।

वर्ष-34 अंक 4 भाद्र-फाल्गुन, शक 1910

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए । अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है ।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए ।

कार्यवाहक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा
राकेश रेनू

सहायक निदेशक : राम स्वरूप मुंजाल (उत्पादन)

आवरण पृष्ठ : ग्रामीण विकास विभाग से साभार एवं
राजेन्द्र कुमार टण्डन

एक प्रति : 2.00 रु.
वार्षिक चंदा : 20 रु.

विषय-सूची

गांधीजी के सपनों का पंचायती राज	2
पंडित नेहरू ने कहा था---	4
पंचायती राज संस्थाओं में दुर्बल वर्गों का सहयोग अपेक्षित	6
सामुदायिक विकास – एक रिपोर्ट	8
पंचायती राज – पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन	11
पंचायती राज –दृष्टिकोण तथा सिफारिशें	16
पंचायती राज – अतीत, वर्तमान और भविष्य	22
प्रजातन्त्र और विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं का पुनर्जीवीकरण	31
पंचायती राज पर उनके विचार	40
पंचायतों को मजबूत बनाना आवश्यक एस.के.डे.	43
पंचायती राज और विकेन्द्रीकरण लक्ष्मी चन्द जैन	45
पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भूमिका निर्मला देशपांडे	50
पंचायत और महिलाएं	53
पश्चिम बंगाल में पंचायतें	55
पंचायती राज : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य	58
ग्रामीण विकास और पंचायती राज	62

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार: सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष: 384888

गांधीजी के सपनों का पंचायती राज

गांधीजी आर्थिक एवं राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक थे। वे गांवों को स्वावलंबी एवं स्वशासित इकाइयों के रूप में देखना चाहते थे, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राचीन काल में हुआ करता था। हालाँकि गाँधीजी इन प्राचीन संस्थाओं को हू-ब-हू रूप में पुनर्जीवित नहीं करना चाहते थे। बदली हुई परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार वे इसमें आवश्यक परिवर्तन भी करना चाहते थे।

एक सच्चे लोकतंत्र में, राजनैतिक एवं आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण अत्यंत आवश्यक है। भारत जैसे विश्व के विशालतम जनतंत्र में तो ये और भी आवश्यक है। सत्ता के केन्द्र में बैठे कुछ लोगों के लिए यह संभव ही नहीं है कि वे करोड़ों लोगों की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को समझ सकें और न ही वे इन आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व निभा सकते हैं। यदि भारत को विकास करना है, तो सत्ता एवं उत्तरदायित्वों में सभी की हिस्सेदारी होनी चाहिए। हमारे ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों की आंशिक सफलता का एक कारण यह भी है कि ये कार्यक्रम सत्ता केन्द्रों में बैठे कुछ लोगों द्वारा बनाए गए हैं, जिनका गांवों में रहने वाले लोगों से सीधा संवाद नहीं है। न ही ये कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों से बन कर आए हैं। इसीलिए इनमें लोगों की आकांक्षाएं प्रतिबिंबित नहीं हो पातीं और इसीलिए ये लोगों की उम्मीदों को पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं कर पाते। गांधीजी कहा करते थे कि भारत की स्वतंत्रता का आरंभ नीचे से होना चाहिए।

गाँधीजी की पक्की राय थी कि स्वतंत्र भारत का संविधान, सुदृढ़ ताने-बाने वाले समन्वित ग्रामीण समुदायों पर आधारित होना चाहिए। इन ग्रामीण समुदायों में सीधा लोकतंत्र होना चाहिए। आजादी के तुरन्त बाद जब गांधीजी को पता चला कि भारतीय संविधान के प्रारूप में पंचायती राज संस्थाओं का जिक्र भी नहीं है तो उन्होंने अपनी चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि यदि हमें अपने लोकतंत्र में लोकवाणी को प्रतिबिंबित करना है तो इस भूल को तुरन्त सुधारना चाहिए। पंचायतों को जितना अधिकार दिया जाये, लोगों के हित में उतना ही अच्छा है। इसी तर्क का परिणाम था कि भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्व में एक उपयुक्त उपबंध जोड़ा गया।

गांधीजी का राम राज्य ग्रामीण गणतंत्रों पर आधारित था। इसकी तस्वीर वह इस प्रकार देते हैं। ग्रामों की सरकार को पाँच सदस्यों की एक पंचायत चलाएगी। इन सदस्यों को हर साल वयस्क ग्रामीण जनता द्वारा चुना जाएगा। मताधिकार महिलाऐं एवं पुरुष कोई भी कर सकते हैं लेकिन उनके लिए न्यूनतम योग्यता की शर्त अवश्य होगी। इस पंचायत के अपने अधिकार एवं न्याय क्षेत्र होंगे। आज के अर्थों में दण्ड नहीं दिए जाऐंगे। यह पंचायत अपने एक वर्ष के लिए विधायी, न्यायी एवं कार्यकारी भूमिका निभाएगी।

गांधीवादी व्यवस्था में, दो पड़ोसी गाँव एक कार्यकारी-इकाई बनाऐंगे। ये दोनों गाँव मिलकर एक प्रतिनिधि चुनेंगे जिसके दिशानिर्देशन में वे कुछ निश्चित कार्य करेंगे। सौ ग्रामों की एक इकाई, अगला राजनैतिक ढांचा होगा। इन सौ गांवों के पचास प्रतिनिधि मिलकर एक प्रतिनिधि का चुनाव करेंगे, जिसकी दिशानिर्देशन में ये अपना काम करेंगे। इसके बाद तीन सौ गांवों की एक इकाई होगी। यहां भी अप्रत्यक्ष चुनाव का सहारा लिया जाएगा। इसी रूपरेखा पर सारे भारत को संगठित किया जायेगा। पंचायत के सदस्यों के सिवाय, अन्य सभी प्रतिनिधियों का चुनाव

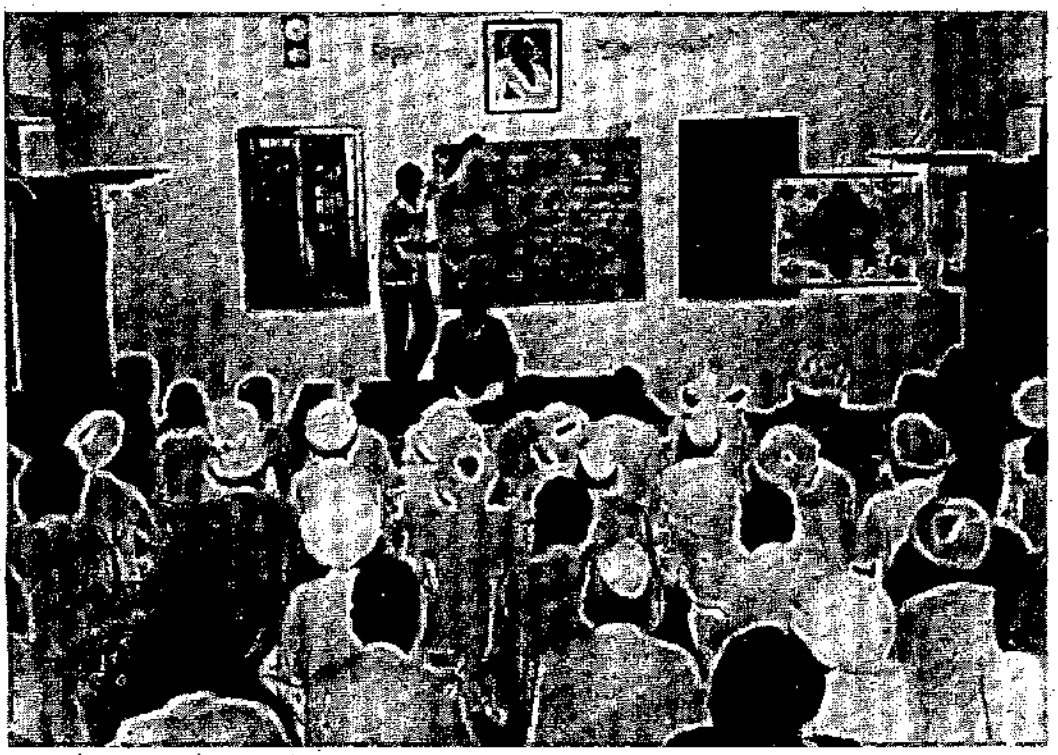

अप्रत्यक्ष रूप से, निचली इकाइयों द्वारा किया जायेगा।

गांधीजी की व्यवस्था में, चुने हुए प्रतिनिधियों से कुछ कार्यों का अपेक्षा की जाती है। हरेक प्रतिनिधि ग्रामवासियों से संपर्क बनाए रखेंगा। वह गांव की गतिविधियों का संचालन इस प्रकार करेगा कि कृषि एवं कुटीर उद्योगों के माध्यम से गांव आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी बन सके। प्रौढ़ शिक्षा का प्रचार करेगा। गांव वालों को साफ-सुथरा रहने एवं उनके स्वास्थ्य के बारे में बताएगा। हर प्रतिनिधि एक डायरी रखेगा, जिसमें उसके दैनिक कार्यकलापों का ब्यौरा होगा।

गांधीवादी राजनैतिक व्यवस्था में, ग्राम पंचायतें सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक इकाइयां हैं। गांवों के सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक जीवन में उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। बाकी ढांचे तो केवल समन्वयन करेंगे और वे कार्य करेंगे जो ग्राम पंचायतों के लिए करना संभव न हो। ग्राम-स्वराज का अर्थ है, अपनी अत्यावश्यक आवश्यकताओं के क्षेत्र में, अपने पड़ोसियों से स्वतंत्र, संपूर्ण गणतंत्र। हालांकि जहाँ आवश्यक हो वहां निर्भरता भी जरूरी है।

इस राजनैतिक व्यवस्था में ग्रामीण पंचायतें सबसे नीचे नहीं हैं, और न ही राष्ट्रीय संसद सबसे ऊपर है। इस राजनैतिक ढांचे में ग्राम पंचायतें सत्ता के केन्द्र में हैं। राज्य एवं केन्द्रीय सरकारें ग्राम-इकाइयों पर आधारित हैं न कि इससे उल्टा। केन्द्रीय सरकार के पास ऐसे कोई अधिकार नहीं है जिससे वह ग्रामीण गणतंत्रों से अपने निर्देश मनवा सके। हां नैतिक दबाव और समझाने-बुझाने का प्रयोग हो सकता है।

गांधीजी का रामराज्य स्वायत्त एवं स्वशासी ग्रामीण गणतंत्रों का संघ है। इन इकाइयों के साथ, संघ में शामिल होने के लिए कोई जबरदस्ती नहीं की जा सकती। ग्रामों द्वारा स्वैच्छिक रूप से ही ऐसा किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार का कार्य सिर्फ इन गणतंत्रों के कार्यों का समन्वयन करना और आम हित की चीजों का प्रबंध एवं निरीक्षण करना है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि गांधीजी भारत के करोड़ों लोगों की मुक्ति का रास्ता जानते थे। ग्रामीण गणतंत्रों पर आधारित उनका रामराज्य ही ऐसा एक मात्र सामाजिक-आर्थिक- राजनैतिक ढांचा है, जिस पर भारत सुगमता एवं सरलता से चल सकता है।■

नीता निगम
जी-212, प्रीत विहार
दिल्ली-110092

पं. नेहरू ने कहा था ...

हम अपने देश में पंचायती राज यानि कि जनतन्त्र की बुनियाद रखने जा रहे हैं।

ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों ही रूपों में राजस्थान भारत का दिल है। राजस्थान के गांवों और शहरों में रहने वाले लोगों ने शपथ ली है कि वे प्रजातंत्र की जिम्मेवारियों को महसूस करेंगे और इस प्रान्त की सरकार ने कानून बनाकर इस जिम्मेवारी को यहां के लोगों को दे दिया है। यह एक ऐतिहासिक घटना है। यह बढ़िया साम्य है कि पंचायती राज कार्यक्रम की शुरूआत महात्मा गांधी के जन्म दिन पर हो रही है।

स्वतंत्र होने के बाद हमने जनता के शासन की स्थापना की है। भारत के प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार दिया गया है। लोगों ने इस अधिकार का उपयोग राज्य की विधान सभाओं में, और लोक सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए किया है। यह सही दिशा में एक कदम था। लेकिन इससे वास्तविक प्रजातंत्र नहीं आ सकता। भारत की वास्तविक प्रगति तभी होगी जब गांवों में रहने वाले लोग राजनैतिक रूप से जागरूक हों। हमारे देश की प्रगति गांवों की प्रगति के साथ जुड़ी है। अगर हमारे गांव तरक्की करते हैं तभी भारत एक मजबूत राष्ट्र बनेगा और कोई भी इसकी प्रगति को रोक नहीं सकेगा।

सात वर्ष पूर्व सामुदायिक कार्यक्रमों और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के साथ हमने इस महान आंदोलन की शुरूआत की है। इन कार्यक्रमों को अब तक तीन लाख से ज्यादा गांवों में फैलाया जा चुका है। कुल मिलाकर अच्छे काम किये गये हैं। किन्तु हम उतने काम नहीं कर पाये हैं जितने कि होने चाहिए थे। हमारी धीमी गति का कारण यह है कि हम कार्यालय पर निर्भर रहते हैं। एक अधिकारी जो कि विशेषज्ञ होता है, विकास कार्य में मदद तो कर सकता है लेकिन यह तभी अमल में लाया जा सकता है, जब लोग इसका उत्तरदायित्व अपने हाथों में ले लें। कुछ लोग सोचते हैं कि यदि उत्तरदायित्व जनता के हाथों में सौंप दिये जाएंगे, तो संभवतः वे इसका भार वहन करने में सक्षम नहीं होंगे। लेकिन लोग दायित्व वहन कर पाएं, इसका प्रशिक्षण उन्हें केवल अवसर प्रदान करके ही दिया जा सकता है। यह आवश्यक हो गया है कि ऐसे ठोस कदम उठाए जायें जिनसे अधिक-से-अधिक दायित्वों को जनता को दिया जा सके। जनता से केवल सलाह ही न ली जाये, बल्कि उन्हें प्रभावकारी अधिकार भी दिये जायें। इसलिए हमने निर्णय लिया है कि प्रत्येक गांव में एक ग्राम पंचायत हो जिसके व्यापक अधिकार हों और एक सहकारी समिति भी हो जो उसके आर्थिक प्रयत्नों में मदद करें।

पंचायत गांव के दैनिक प्रशासन में मदद करेगी और सहकारी समिति इसके आर्थिक क्रियाओं की व्यवस्था करेगी। प्रशासन के दायित्व केवल उच्च अधिकारियों के हाथों में न हों, बल्कि देश की 40 करोड़ जनता में विभाजित हों। हमें लोगों को इस तरह इकट्ठा करना है ताकि वे एक दूसरे के सहयोग और सलाह से काम करें।

तीसरी महत्वपूर्ण संस्था जिसकी जरूरत हमारे गांवों को है,वह विद्यालय है। हमारे प्रत्येक गांव में विद्यालय होना चाहिए ताकि ग्रामीण लोग शिक्षा प्राप्त कर सकें और महिलायें शिक्षा के लिए समान अवसर प्राप्त कर सकें।

इस समय हमारी दूसरी पंचवर्षीय योजना चल रही है। यह अवधि साल-दो साल में समाप्त हो जायेगी। तीसरी पंचवर्षीय योजना निमार्णाधीन है। अब समय आ गया है कि योजना बनाने और विकास कार्यक्रमों को लागू करने के दायित्व जनता को सौंपे जायें। इसलिए मैं आप सबसे यह कहना चाहता हूं कि ऐसे दायित्वों को विश्वास और साहस के साथ स्वीकार करें। भारत की जनता आपकी ओर देख रही है। मुझे पूरा विश्वास है कि सिर्फ राजस्थान में ही नहीं बल्कि देश के उन सभी हिस्सों में जहां दायित्वों को जनता को सौंपा गया है,

बेहतर परिणाम सामने आयेंगे।

आपने एक शुभ दिन पर यह ऐतिहासिक कदम उठाया है। इसलिए मैं आप सबको बधाई और अपनी शुभकामनाएं देता हूं। आपको अपनी पंचायतों को सफल करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

पहले भारत में महाराजा और उनकी प्रजा अलग-अलग बंटे हुए थे। लेकिन अब शासक और शासित के बीच का भेद मिटा दिया गया है। फिर भी, कभी-कभी हमारे अधिकारी अपने को स्वामी समझने लगते हैं। मैं उम्मीद करता हूं कि आपके अध्यक्ष, सरपंच और दूसरे अधिकारीगण उस तरीके से कार्य नहीं करेंगे। अपना प्रभाव फैलाने वाला और नौकरशाही के तरीकों का इस्तेमाल करने वाला कोई अधिकारी जनता का सहयोग प्राप्त नहीं कर सकता। एक अच्छा अधिकारी समानता की भावना से काम करता है। तभी वह दूसरों को प्रशिक्षण दे सकता है। आपको पारस्परिक सहयोग के साथ काम करना चाहिए। राजनैतिक जीवन में सभी के पास एक वोट है, आर्थिक मामलों में प्रत्येक को समान अवसर प्राप्त हैं। हमारी पंचायतों में भी प्रत्येक को समान समझा जाए, पुरुष और महिलाओं के बीच तथा ऊंच और नीच के बीच कोई भेद न रखा जाए। हमें एकता और भाईचारे की भावना के साथ तथा खुद में और अपने काम में विश्वास के साथ आगे बढ़ना है।

दुनिया की निगाहें आपकी ओर लगी हुई हैं। यदि आप अपने निश्चय से पीछे हटते हैं, और आपसी झगड़ों और छोटी-छोटी बातों में उलझते हैं तब आप अपने मिशन में सफल नहीं हो पाएंगे। आपको राजस्थान की जनता को जगाना है, और यह एक महत्वपूर्ण कदम होगा। आने वाली पीढ़ियां गर्व के साथ यह कह पाएंगी कि आपने प्रजातंत्र की मजबूत बुनियाद रखी थी। □

---

2 अक्तूबर, 1959 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा नागौर में पंचायती राज के उद्घाटन के अवसर पर दिया गया भाषण।

पंचायती राज संस्थाओं में दुर्बल वर्गों का सहयोग अपेक्षित

— राजीव गांधी

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण महज सत्ता का स्थानान्तरण नहीं है। इसमें जिम्मेदारी को सौंपना भी शामिल है। दो प्रमुख जिम्मेदारियां ऐसी हैं जिन्हें लोकतंत्र की संस्थाओं को निभाना चाहिए। पहला है – वित्तीय अनुशासन। जो प्राधिकरण केवल खर्च करते हैं वे वित्तीय दृष्टि से जिम्मेदार नहीं हो सकते। वित्तीय अनुशासन तथा उत्तरदायी योजना के लिए यह आवश्यक है कि राजस्व और संसाधनों का कम से कम कुछ हिस्सा खर्च करने वाले प्राधिकार द्वारा बढ़ाया जाना चाहिए। वास्तव में यह केवल बजट संतुलन करने की अपेक्षा कहीं बड़ा प्रश्न है। अनुभवों से हमने सीखा है कि जब राजस्व अर्जित करने तथा व्यय करने का बंधन टूट जाता है, तो अत्यावश्यक विकास की कुर्बानी करके जनाधिकारवादी कल्याण योजनाओं की ओर ध्यान जाता है। उचित संतुलन अवश्य बनाए रखा जाना चाहिए। अंतिम विश्लेषण में यदि सही संतुलन नहीं रखा जाता है तो इससे लोगों को नुकसान पहुंचता है। जब समुदाय यह महसूस करता है कि वह विकास प्रक्रिया में योगदान कर रहा है तो दीर्घकालीन विकास को छोड़कर जनाधिकारवादी अल्पकालिक उपायों का अनुसरण करने की अपेक्षा अधिक समय तक चलने वाले लाभों के साथ संतुलित विकास पर जोर दिए जाने के अवसर होते हैं। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि आप अपने समक्ष प्रस्तुत मुद्दों के पहलू पर विचार करें।

पंचायती राज संस्थाओं पर जो दूसरी बड़ी जिम्मेदारी सौंपी गई है, वह है – समाज के अपेक्षाकृत कमजोर वर्गों – अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं तथा अन्य असुविधाग्रस्त तथा समाज के संभावित असुविधाग्रस्त वर्गों के हितों का संरक्षण तथा सुरक्षा। हमारे विषमतापूर्ण समाज में यह आशंका व्यक्त की गई है कि पंचायती राज का पहला परिणाम पहले से प्रभुत्व वाले सामाजिक-आर्थिक ग्रुपों के प्रभुत्व को पुनः लागू करना है। इस आशंका पर बहुत गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। पंचायती राज संस्थाओं के छिटपुट और अनिश्चित होने के कारण क्या यह प्रवृत्ति विकसित हुई है कि इन संस्थाओं पर प्रभुता वाले ग्रुपों का दबदबा रहेगा? यदि ऐसा है तो हम इन संस्थाओं के लिए समय-समय पर नियमित चुनाव कराने में सक्षम हैं। पंचायती राज स्तर पर वही प्रक्रिया लागू करने की संभावना, जिसे हमने राज्य विधान सभाओं तथा संसद में संचालित होते हुए देखा है, जैसे निहित वर्ग तथा जातिगत हितों को समाप्त करना। राज्य विधान सभाओं तथा संसद में हमने देखा कि प्रभुत्वशाली सामाजिक-आर्थिक ग्रुप प्रतिद्वंद्वी राजनीतिक दलों के प्रति वफादारी में बंट जाते हैं और अन्य ग्रुपों के साथ, विशेषकर जो आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से अपेक्षाकृत कमजोर हैं परन्तु संख्या की दृष्टि से अपेक्षाकृत मजबूत हैं, के साथ स्वार्थ के गठजोड़ों को बना डालते हैं। पंचायती राज संस्थाओं में लोकतंत्र के नियमित संचालन से कुछ समय में यह सुनिश्चित हो जाएगा कि प्रभुत्वशाली सामाजिक-आर्थिक ग्रुपों द्वारा सत्ता का अधिकार नहीं है। यह दीर्घकालीन समाधान है। लेकिन यदि हम शुरू से ही प्रणाली में संवैधानिक तथा वैधानिक संरक्षण की व्यवस्था नहीं करते, तो निकट भविष्य में गंभीर समस्याएं होंगी। ऐसे मामलों की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाना है, जैसे जनजातीय उपयोजना कोष के व्यय पर प्रभावी जनजातीय नियंत्रण, योजना कोष के व्यय पर अनुसूचित जाति का प्रभावी नियंत्रण। हम चाहेंगे कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण उनके हितों में बाधक नहीं है, यह सुनिश्चित करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं में कमजोर वर्गों को शामिल करने तथा सुरक्षा नियंत्रण और संतुलन के पक्ष पर बहुत गहराई से ध्यान दिया जाए।

लोकतांत्रिक जिला योजना में विशेषज्ञता की आवश्यकता पड़ती है। विशेषज्ञता के लिए प्रशासनिक तंत्र के आकार का अत्यधिक विस्तार करके उसे प्राप्त कर लेने की बात हमें नहीं सोचनी चाहिए। प्रशासन की लागत पहले ही लोगों तक लाभ पहुँचने की लागत को उपलब्ध संसाधनों के बहुत अधिक अनुपात में खाती जा रही है। लोगों को पूरे खर्चे के अत्यन्त छोटे अंश में लाभ मिल पाता है। जिला प्रशासन को प्रभावी बनाने के लिए कुछ अतिरिक्त पद बनाए जाने चाहिएं, परन्तु काफी हद तक प्रक्रिया तैयार की जानी चाहिए और उसमें स्थानीय प्रतिभा का विकास किया जाना चाहिए। इस प्रकार की प्रतिभा सभी जिलों में, स्थानीय कालेजों में तथा अन्य शैक्षिक संस्थाओं में, क्षेत्र में संचालन करने वाली स्वयंसेवी एजेंसियों में, व्यावसायिक संगठनों में तथा अनेक समुदायों में उपलब्ध है। आप का काम यह देखना है कि जिला योजना की जरूरतों के साथ पंचायती राज संस्थाओं का आप कितना अधिक से अधिक तालमेल बढ़ा सकते हैं जिससे कि तकनीकी उत्कृष्टता को छोड़े बिना ही जिले कि ऐसी योजना तैयार करना संभव हो सके जिसमें लोगों की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा प्राथमिकताओं की झलक मिलती हो। यहां तक कि प्रतिनिधि राजनीतिक संस्थाओं पर आधारित जिला योजना में लोगों की प्राथमिकताएं तथा आकांक्षाएं परिलक्षित होंगी जिससे जिला योजना में स्थानीय तथा समुदाय के हितों को बेहतर ढंग से शामिल करने की स्थानीय विशेषज्ञता को शामिल कर लिया जाएगा।

---

18 जून 1988 को कोयम्बतूर में जिला अधिकारियों की कार्यशाला में दिए गए प्रधान मंत्री के भाषण में से।

सामुदायिक विकास-एक रिपोर्ट

सामुदायिक विकास हमारे देश के लिये अपेक्षाकृत नयी प्रणाली है। इससे पहले ग्रामीण विकास, रचनात्मक कार्य, प्रौढ़ शिक्षा, ग्रामीण उत्थान जैसे विषयों की चर्चा होती रही है। काफी समय से 'समुदाय' का अर्थ किसी धार्मिक अथवा जातिवर्ग समूह से लिया जाता रहा है। कुछ मामलों में विशेष आर्थिक समूहों को भी समुदाय विशेष के नाम से जाना जाता था। लेकिन अब सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ होने से समुदाय का अर्थ व्यापक हो गया है और इसका अर्थ है सारा ग्राम समाज जिसमें जाति, वर्ग, धर्म अथवा धार्मिक स्तर का कोई भेद नहीं है। सामुदायिक विकास का अर्थ है सारे क्षेत्र का समग्र विकास और सबके लिए विकास। योजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास की व्याख्या करते हुए कहा था, "यह ऐसा उपाय है जिसके जरिये पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक जीवन में सुधार लाने की प्रक्रिया आरंभ की जानी है।" इस तरह इलाके का विकास लोगों की अपनी लोकतांत्रिक व सहकारी संस्थाओं के माध्यम से किया जाता है और सरकार केवल तकनीकी सलाह, सप्लाई व ऋण की सहायता देती है। अर्थात सारे समुदाय का विकास समुदाय की अपनी ही भागीदारी से किया जाता है।

इस विधि से लोकतांत्रिक जड़ें मजबूत होती हैं क्योंकि ग्रामवासी विकास का महत्व व इस प्रक्रिया में अपनी भागीदारी के महत्व को समझ पाते हैं। इस सामुदायिक विकास कार्यक्रम में सरकार की भूमिका यह है कि वह एक सुदृढ़ नीति के अंतर्गत राष्ट्रीय आधार पर कार्यक्रम तैयार करके उन्हें चलाये तथा ऐसी तकनीकी सेवा व मूल सामग्री उपलब्ध कराये जो समुदाय के बूते से बाहर है।

कई वर्षों तक सामुदायिक विकास योजनायें विकास मंडल जैसी तदर्थ संस्थाओं के माध्यम से लागू करने की कोशिश की गयी। यह कहा गया कि ग्राम पंचायत इसके लिये उपयुक्त नहीं है। इससे सामुदायिक विकास कार्यक्रम सही अर्थों में लोकतांत्रिक नहीं हो सकता। इसे तो सहकारी संस्थाओं तथा निर्वाचित प्रतिनिधि संस्थाओं के द्वारा ही प्रभावी बनाया जा सकता है। सम्पूर्ण विकास के लिये योजनाबद्ध तरीके से कार्य में लगे इस विशाल देश में सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विकास का अभिन्न रूप से जुड़ा होना अनिवार्य है। वास्तव में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के तीन लक्ष्य हैं : कृषि, बागवानी, पशु पालन, मछली पालन आदि में वैज्ञानिक तरीके अपनाकर उत्पादन व रोजगार में वृद्धि लाना, सहायक व कुटीर उद्योगों की स्थापना; स्वयं-सहायता, आत्म-निर्भरता व सहयोग, सहकारिता की भावना का विस्तार तथा गांवों में खाली समय व फालतू क्षमता का समाज के लाभ के लिये उपयोग। इस तरह आर्थिक विकास व कल्याणकारी गतिविधियां साथ-साथ चलती हैं। पीने के पानी की सप्लाई कृषि, बागबानी आदि में सुधार, सहकारी गतिविधियों, ग्रामीण उद्योग व सामुदायिक स्वास्थ्य जैसे कार्यों से सामुदायिक कल्याण स्वतः होगा।

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण

सामुदायिक विकास कार्यक्रम में सबसे बड़ी चुनौती लोगों को भागीदारी के लिये प्रोत्साहित करने की है। ग्राम पंचायत में ऊपर की संस्थायें इसमें अधिक दिलचस्पी नहीं दिखातीं। इसे ध्यान में रखकर योजना आयोग ने दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस बात पर बल दिया कि जिले में ही प्रशासन का ऐसा सुगठित लोकतांत्रिक ढांचा तैयार किया जाये जिसमें ग्राम पंचायतें उच्च स्तर की संस्थाओं में स्वतः जुड़ी हों। ऐसे ढांचे में संस्था का काम सामान्य कामकाज और क्षेत्र का विकास देखना होगा तथा कानून व व्यवस्था, न्याय प्रशासन, राजस्व प्रशासन जैसे काम अन्य उच्च संस्थाओं के जिम्मे होंगे।

इससे पूर्व जिला बोर्डों को लोगों को स्वशासन की जानकारी प्रदान करने का काम सौंपा गया था पर उनके पास इसके लिये न तो साधन थे और न ही कोई पृष्ठभूमि। उनका कार्यक्षेत्र भी काफी बड़ा था और वे सब तरफ ध्यान नहीं दे पाते थे। इसलिये राज्यों ने धीरे-धीरे इनका काम अपने हाथ

में लेना शुरु कर दिया। ग्रामीण चिकित्सा सहायता, सड़कों की देखभाल इसके कुछ उदाहरण हैं।

पंचायत समिति

इसलिये एक ऐसी संस्था की आवश्यकता महसूस की गयी जो इनका स्थान ले और ग्रामीण क्षेत्र में सारा विकास कार्य इसकी देखरेख में हो। यह संस्था निर्वाचित होनी चाहिये और इसके पास समुचित साधन व तंत्र होना चाहिये। इस पर सरकारी नियंत्रण कम से कम होना चाहिये। स्थानीय जनता का इसमें पूरा विश्वास व पूरी भागीदारी होनी चाहिये। अक्सर अधिकार दूसरे को देने को विकेंद्रीकरण मान लिया जाता है। अधिकार किसी संस्था को सौंपने से इस संस्था के कामकाज की जिम्मेवारी से सरकार अंततः मुक्त नहीं हो जाती। यह संस्था तो हमेशा सरकार के अधीन ही रहती है। लेकिन दूसरी ओर विकेंद्रीकरण ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सरकार अपनी कुछ जिम्मेवारियों व कर्तव्यों को पूरी तरह छोड़कर इन्हें किसी संस्था को दे देती है। इस प्रकार उसका नियंत्रण भी काफी हद तक ढीला हो जाता है। परन्तु पूरी तरह नियंत्रण छोड़ना न तो संभव है और न ही वांछित ही। अधिकार सौंपने की प्रक्रिया तो क्रमशः निचले स्तरों के लिये जारी है लेकिन जिम्मेवारी व सत्ता का विकेंद्रीकरण राज्य स्तर से नीचे नहीं पहुंच पाया है। इसकी अब बड़ी आवश्यकता है। इसके लिये ऐसी संस्था को यह काम सौंपना होगा जो अपने क्षेत्र के सारे विकास के लिये जिम्मेवार होगी। सरकार केवल इन्हें मार्ग निर्देशन, देखरेख व उच्च स्तर के नियोजन में ही मदद करेगी तथा आवश्यकता पड़ने पर अतिरिक्त वित्त की व्यवस्था करायेगी। इस स्थिति में ग्रामीण विकास व ग्रामीण कल्याण सुचारू ढंग से हो सकेगा।

हम इस संस्था को पंचायत समिति कह सकते हैं। इसके लिये ग्राम पंचायतों से अप्रत्यक्ष चुनावों के जरिये सदस्य लिये जा सकते हैं। प्रखंड में पंचायतों का समूहीकरण किया जा सकता है, इन्हें ग्राम सेवक मंडल कहा जा सकता है। इन पंचायतों के पंच अपने में से लोगों को पंचायत समिति के लिये चुनेंगे। ये निर्वाचित प्रतिनिधि दो स्त्रियों को समिति के लिये सहयोजित करेंगे। अगर इलाके में अनुसूचित जातियों की आबादी कुल लोगों के पांच प्रतिशत से अधिक है तो इनका भी एक सदस्य समिति में नामजद किया जायेगा। इसी प्रकार जनजाति सदस्य भी लिया जायेगा। पंचायत समिति का कार्यकाल सामान्यतः पांच वर्ष का हो सकता है।

विकास के लिये विकेंद्रीकरण

विकेंद्रीकरण की सबसे अधिक आवश्यकता विकास के क्षेत्र में है और इसी क्षेत्र में पंचायत समिति को अविलंब कार्य आरंभ करना चाहिये। इसे पूरे कृषि विकास, जैसे बीजों के चयन, खरीद-बिक्री, कृषि कार्यों में सुधार, सरकार व सहकारी बैंकों की सहायता से कृषि के लिये ऋण, लघु सिंचाई योजनाओं, पशुधन में सुधार, स्थानीय उद्योगों के विकास, पीने के पानी की सप्लाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य-सफाई, चिकित्सा सहायता, आदि अपने हाथ में लेने चाहिये। इसे स्थानीय मेला-समारोह, सड़कों की मरम्मत व निर्माण, विद्यालयों की देखरेख, पिछड़ी जातियों के कल्याण आदि का काम भी देखना चाहिये। इसे छोटे जंगलों की देखभाल, चौकीदारी आदि की जिम्मेवारी भी दी जानी चाहिये।

ग्रामीण अंचल में सारा विकास कार्य चूंकि पंचायत समिति के जिम्मे होगा, इसलिये आय के कुछ साधन इसके अंतर्गत किये जा सकते हैं। ये हैं :-

1. अंतिम वर्ष में प्रखण्ड एकत्रित लगान का एक निर्धारित प्रतिशत, अगर इससे पंचायत समिति की आय में काफी अंतर बनता हो, तो समूचे राज्य के भू-राजस्व का एक हिस्सा इन सबमें बराबर बांटा जा सकता है।
2. भू-राजस्व पर आवश्यक उपकर, कुछ लघु सिंचाई कार्यों के लिये जल-शुल्क।
3. व्यवसायों, कामधंधों, रोजगार पर शुल्क।
4. अचल संपत्ति के हस्तांतरण पर शुल्क पर अधिकार।
5. सम्पत्ति से मिलने वाला किराया व लाभ जैसे नौका, मछली के तालाब आदि।
6. सड़क, चुंगी आदि का पूरा शुल्क।
7. तीर्थयात्रा शुल्क।
8. मनोरंजन कर।
9. प्राथमिक शिक्षा कर।
10. मेलों, हाटों, बाजारों आदि से आय।
11. मोटरगाड़ी कर में हिस्सा।
12. जनता का स्वैच्छिक अंशदान।
13. सरकार से अनुदान।

अभी राज्य सरकारें ग्रामीण विकास पर मुख्य खर्च अपने तंत्र के जरिये और मामूली खर्च ग्राम पंचायतों के जरिये करती हैं अथवा गैर-सरकारी संस्थाओं को सीधी सहायता के जरिये खर्च करती हैं प्रखंड में सारा केंद्रीय या राज्य सरकार का खर्च पंचायत समिति के जरिये होना चाहिये। पंचायत समिति में दो स्तर के अधिकारी हों – प्रखंड स्तर पर तथा ग्राम स्तर पर। प्रखंड स्तर पर विभिन्न तकनीकी अधिकारी, जैसे कृषि, सड़क, सिंचाई, स्वास्थ्य, पशुपालन, सहकारिता, समाज शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा आदि क्षेत्रों के होंगे। इनके अलावा मुख्य अधिकारी वह होगा जिसे प्रशासनिक अधिकार प्राप्त होंगे। इन सबको राज्य सरकार नियुक्त करेगी और पंचायत समिति से संबद्ध करेगी।

ग्राम पंचायत

ग्राम पंचायत स्तर के कर्मचारी ग्राम सेवक, प्राथमिक अध्यापक आदि होंगे जिनकी नियुक्ति जिला परिषद करेगी।

पंचायत समिति का अध्यक्ष चुनाव से तय होगा। इसका ग्राम पंचायत से वैसा ही सीधा संबंध होगा जैसे ग्राम सेवक और ग्राम पंचायत के बीच होता है। जहां तक हो सके, ग्राम पंचायत का इस्तेमाल लगान एकत्र करने में किया जाना चाहिये लेकिन यह काम उन्हीं ग्राम पंचायतों को सौंपना चाहिये जो कामकाज में कुछ हद तक कुशल सिद्ध होती हैं। इससे लगान ठीक वसूल होगा तथा स्वयं पंचायत को इसके लिये कमीशन दिया जा सकता है। ग्राम पंचायत के बजट की जांच और अनुमोदन की जिम्मेवारी पंचायत समिति की होगी। वह ग्राम पंचायत को पूरी सलाह व सहायता भी प्रदान करेगी।

लोकतंत्र में निहित समस्यायें

ग्राम प्रशासन के लोकतंत्रीकरण से कुछ समस्यायें सामने आयी हैं। एक तो यह कि गुटबंदी और आपसी विवाद तेज हुए हैं। जाति-वर्ग के आधार पर अलगाव बढ़ा है। इसके लिये ग्राम स्तर पर चुनाव मुख्यतः जिम्मेदार रहे हैं। इसलिये यह सुझाव दिया गया था कि ग्राम पंचायत चुनाव जहां तक हो सके, लोगों में आम सहमति पर आधारित हों ताकि चुनाव प्रचार में कटुता व विरोध न हो। लोगों में यह भावना जगायी जाये कि पंचायत की सदस्यता लोगों की सेवाभाव की जिम्मेदारी वाली है और यह सत्ता व अधिकार प्राप्ति का माध्यम नहीं है। लेकिन आम राय का अर्थ यह नहीं कि इसके लिये लोगों पर दबाव डाला जाये क्योंकि इससे अंदर ही अंदर असंतोष, असहमति सुलग सकती है जो बाद में विस्फोटित हो सकती है। इसका विकास कार्यों पर बुरा असर पड़ सकता है। इसलिये स्थानीय प्रौढ़ जनता को स्वतंत्रता से, मर्जी से किसी को वोट देने का अधिकार होना अनिवार्य है।

जिला परिषद

इन पंचायत समितियों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिये जिला परिषदें स्थापित की जा सकती हैं। इनके सदस्य पंचायत समितियों के अध्यक्ष, विधायक तथा क्षेत्र के संसद सदस्य हो सकते हैं। इनके अलावा इस परिषद में जिला स्तर के अधिकारी शामिल किये जा सकते हैं जो शिक्षा, चिकित्सा, पशुपालन, स्वास्थ्य, कृषि, इंजीनियरी, कल्याण, सार्वजनिक निर्माण और अन्य विकास कार्यों से संबद्ध हों। जिले के कलेक्टर इस परिषद के अध्यक्ष हों।

ये जिला परिषदें पंचायत समितियों के बजट का अध्ययन करके इनका अनुमोदन करेंगी।

स्थानीय संस्थाओं के लिये निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रशासनिक कामकाज का प्रभावी प्रशिक्षण देने की भी आवश्यकता है ताकि इन्हें उपयोगी दिशा दी जा सके। ग्रामीण प्रशासन (विशेषकर विकास) एक कठिन पहलू है। इससे निपटने के लिये न्यूनतम जानकारी होना अनिवार्य है।

विकास कार्य जिम्मेदारी व अधिकारों के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। सामुदायिक विकास सही अर्थों में तभी संभव है जब समुदाय अपनी समस्याओं को समझे, जिम्मेदारी महसूस करें, अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के जरिये समुचित अधिकारों का प्रयोग करे तथा स्थानीय प्रशासन पर निगाह रखकर उसे निरंतर व दिलचस्पी से काम करते रहने को प्रेरित करे। □

ओम प्रकाश दत्ता

सामुदायिक कार्यकर्त्ता एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा अध्ययन दल की रपट पर आधारित।

पंचायती राज —पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन

स्वतंत्रता मिलने के साथ ही लोकतंत्रीय राज्य में जनता को उसके अपने कल्याण कार्य में सहभागी बनाने की पद्धति पर विचार किया जाना आवश्यक था। वयस्क मताधिकार से राज्यों के विधान-मंडलों तथा भारत की संसद के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने के काम में जनता साझीदार बनी। परन्तु केवल यही एक कल्याणकारी राज्य की बुनियादी समस्याओं से निपटने के लिए अपने आप में पर्याप्त नहीं था। इस दिशा में प्रथम कदम के तौर पर राज्यों ने ग्राम पंचायतों और ग्राम सभाओं की पुरानी संकल्पना को पुनर्जीवित करने के लिए कानून बनाए, ताकि जनता को नीचे के स्तर पर अपने मामलों में सम्मिलित किया जा सके। यह दृष्टिकोण पंचवर्षीय योजना में परिलक्षित था। इसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि ग्रामों या ग्राम समूहों के लिए कुछ वर्षों की अवधि में पंचायतों की स्थापना आवश्यक है। इसमें ग्रामीण समाज के लिए आर्थिक व अन्य गतिविधियों को पंचायतों का एक कर्तव्य माना गया। सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू करके इस संकल्पना को और आगे बढ़ाया गया। इस संकल्पना के साथ-साथ एक ऐसी प्रशासनिक प्रणाली स्थापित करना आवश्यक समझा गया जो स्थानीय स्तर पर विकास की जन-कल्याण संबंधी समस्याओं का सामना कर सके। सामुदायिक विकास के साथ राष्ट्रीय प्रसार सेवा के माध्यम से सामुदायिक विकास कार्य को चलाने की बात सोची गई। खंड—स्तर पर जनता के नामांकित प्रतिनिधियों के जरिए जनसहयोग प्राप्त किया जाता था। जैसे-जैसे इन नये दृष्टिकोण से अनुभव प्राप्त हुए, यह महसूस किया गया कि सम्भवतः इसमें जनता के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप से नहीं हुआ और इसलिए यह कारगर नहीं है। यह बात दूसरी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में परिलक्षित हुई थी। इसमें जिले के भीतर लोकतंत्रीय संस्थाओं के विकास की गति तीव्र करने की आवश्यकता बताई गई। इसमें जिला प्रशासन की बढ़ी हुई जिम्मेदारियों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया। यह राज्य योजनाओं में जिला योजनाओं को अलग करने के प्रयास के परिणामस्वरूप हुआ। अतः इस बात पर पुनः जोर दिया गया कि जब तक गावों के लिए ऐसी व्यापक योजना नहीं बनाई जाती, जो सारे समुदाय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखे, तब तक किराएदार काश्तकार, भूमिहीन मजदूर और दस्तकार जैसे समाज के कमजोर वर्ग सरकार द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं से यथेष्ठ लाभ नहीं उठा सकते। योजना में जिले के भीतर प्रशासन के ऐसे प्रजातांत्रिक ढांचे की कल्पना की गई जिसमें ग्राम पंचायतें उच्च स्तरों पर सार्वजनिक संगठनों से जुड़ी होंगी।

बलवंत राय मेहता अध्ययन दल

जनवरी, 1957 में सामुदायिक विकास परियोजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा में किफायत और कार्यकुशलता लाने की दृष्टि से बलवंत राय मेहता अध्ययन दल को नियुक्त किया गया। इसे अन्य बातों के अलावा इसका भी जायजा लेना था कि यह आंदोलन स्थानीय नेतृत्व का उपयोग करने में और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में सुधार लाने की सतत् प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिए संस्थाओं के निर्माण में किस हद तक सफल रहा। सामुदायिक विकास परियोजनाओं और राष्ट्रीय प्रसार सेवा के द्वारा विकास कार्यों के लिए आवश्यक साधन जुटाने, समन्वित कार्रवाई करने और स्टाफ की व्यवस्था रोकने की बात सोची गई। वह और परिवर्तन भी लाना चाहते थे। खंड के व्यापक विकास के लिए भारत सरकार द्वारा बजट की भी व्यवस्था की गई थी। खंड स्तर पर इसे नामांकित सलाहकार समितियों की मदद से चलाया जाना था। राष्ट्रीय प्रसार सेवा ने पहली बार राजस्व प्रशासन से अलग एक विकास इकाई का सृजन किया। बलवंत राय मेहता दल ने इस प्रकार के संस्थागत ढांचे पर विचार किया था।

बलवंत राय मेहता अध्ययन बल की मुख्य धारणा

बलवंत राय मेहता दल ने दो मुख्य दिशाओं में आगे बढ़ने पर जोर दिया। सर्वप्रथम, विकास कार्यक्रम के कारगर ढंग से कार्यान्वयन के लिए प्रशासन का विकेंद्रीकरण होना चाहिए और विकेंद्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली निर्वाचित निकायों के नियंत्रण में होनी चाहिए। जैसा कि रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है, "बिना जिम्मेदारी और शक्तियों के

विकास कार्यों में प्रगति नहीं हो सकती। सामुदायिक विकास सही अर्थों में तभी हो सकता है जब समुदाय अपनी समस्याओं को समझे, आवश्यक अधिकारों का प्रयोग कर सके और स्थानीय प्रशासन पर लगातार और समझदारी के साथ निगाह रख सके। इस उद्देश्य से हम शीघ्र ही चुने हुए सार्विधिक एवं निर्वाचित स्थानीय निकायों की स्थापना करने की सिफारिश करते हैं और आवश्यक संसाधन, अधिकार तथा प्राधिकार सौंपे जाने की भी सिफारिश करते हैं।" रिपोर्ट के अनुसार लोकतंत्र विकेंद्रीकरण की बुनियादी इकाई खंड/समिति स्तर पर होनी चाहिए। उन्होंने जिला स्तर के लिए केवल सलाहकार की भूमिका की बात सोची थी।

पंचायती राज की स्थापना

राष्ट्रीय विकास परिषद ने जिला तथा खंड स्तर पर लोकतंत्रीय संस्थाओं की शुरूआत करने के अपने उद्देश्य की घोषणा की और सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य को इसके लिए ऐसे ढांचे का निर्माण करना चाहिए, जो उसकी परिस्थितियों की दृष्टि से सर्वोत्तम हो। इसके बाद के दशक में बलवंत राय मेहता अध्ययन दल के व्यापक सुझावों के आधार पर देश के अधिकांश भाग में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की गई। समस्त ग्राम पंचायतों के अंतर्गत 90 प्रतिशत देहाती आबादी आ गई।

ढांचा और कार्यकलाप की रूप रेखा

कुछ राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं का विहंगम दृष्टि से जायजा लेने पर पंचायती राज के ढांचे और इसके कार्य के पहलुओं के संबंध में बहुमूल्य जानकारी मिल जाती है। आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत जैसे विशाल और वैविध्यपूर्ण देश में कार्यनिष्पादन में कुछ हद तक असमानता होना अवश्यम्भावी है। ऐतिहासिक परिवर्तनों के कारण समस्या और भी जटिल हो जाती है। अतः पंचायती राज के ढांचे और कार्यों में भी परिवर्तन होता रहा है। असम में इसके स्तरों और सौंपे गए कार्यों में परिवर्तन किया जाता रहा है। इस समय वहां सब-डिवीजन के स्तर पर मोहकुमा परिषद और 15 हजार से अधिक आबादी के लिए पंचायत है। आंध्र प्रदेश में जहां जिला परिषदों के पास सीमित कार्यकारी अधिकार हैं, वहां शिक्षा जैसे क्षेत्रों में उत्साहवर्द्धक परिणाम सामने आए हैं। पंचायत समितियों का कार्य सम्पादन भी देखने लायक है। बिहार में केवल आठ जिलों में ही जिला परिषदों की शुरूआत की गई थी, लेकिन इन्हें शीघ्र ही बंद करना पड़ा। आंध्र प्रदेश के साथ-साथ राजस्थान में भी पंचायती राज की शुरूआत पहले की गई। यहां शुरू के चरण में समिति स्तर पर बड़े उत्साह से काम हुआ। तमिलनाडु और कर्नाटक में ऐसी जिला परिषदें नहीं हैं, जिन्हें कार्यपालिका के कार्य सौंपे गए हों, लेकिन वहां भी समिति/ताल्लुका बोर्डों ने अच्छा काम किया है। तमिलनाडु में समितियों ने शिक्षा, पानी सप्लाई, सड़कों और पोषण के क्षेत्रों में अच्छा काम किया है और इसकी आमतौर पर सराहना की गई है। केरल में सिर्फ ग्राम पंचायतें हैं, लेकिन इनमें से कुछ आधे खंड के आकार की हैं। यहां भी नगरपालिका संबंधी और अन्य सार्वजनिक कार्यों के क्षेत्र में इनका निष्पादन काफी संतोषजनक रहा है। यह बात उल्लेखनीय है कि निर्वाचित निकायों में विभिन्न राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व होते हुए भी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और कुछ विकास परियोजनाओं के प्रबोधन का काम में आवश्यक सामंजस्य रहा। उत्तर प्रदेश में जहां एक ओर बड़ी संख्या में छोटी पंचायतों की स्थापना की गई, वहां दूसरी ओर ऐसी जिला परिषदें भी बनाई गईं, जिनके पास अधिकार बहुत सीमित थे। अधिकारों तथा संसाधनों की अत्यधिक कमी के कारण उनकी उपलब्धियां नगण्य रहीं। मध्य प्रदेश में लोकतंत्रीय विकेंद्रीकरण की योजना वाला अधिनियम कई भागों में कार्यान्वित किया गया और इसीलिए यह लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ। जहां तक पश्चिम बंगाल का संबंध है, वहां चार स्तर वाले ढांचे की जगह बड़ी पंचायतों वाले तीन स्तर के ढांचे पर अमल शुरू हुआ। गुजरात और महाराष्ट्र में बलवंत राय मेहता रिपोर्ट से कुछ हटकर तीन स्तरों वाले ढांचे का गठन किया गया। इसमें जिला स्तर पर विकेंद्रीकृत ढांचा है। इसका कार्य-निष्पादन विशेष रूप से विकेंद्रीकृत योजना और विकास के क्षेत्र में कारगर सिद्ध हुआ। उत्तर-पूर्वी भारत की डिस्ट्रीक्ट कौंशिलों में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिनका अध्ययन किया जाना चाहिए।

पंचायती राज की क्षति

विगत में कई ऐसी घटनाएं हुई जिसमें पंचायती राज का ढांचा कमजोर हुआ है। वस्तुतः महाराष्ट्र, गुजरात को छोड़कर पंचायती राज संस्थाओं को योजना तथा इसके कार्यान्वियन का काम बड़े पैमाने पर देने की बात बहुत कम जगह पर हुई। मोटे तौर पर नव-निर्वाचित पंचायती राज संस्थाओं को वही काम सौंपे गए जो पहले ग्राम पंचायतें करती थीं या जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम का हिस्सा थे। वह

विचार पीछे छूट गया कि सभी विकास कार्य केवल खंड स्तर के संगठन के माध्यम से होने चाहिए, हालांकि पंचायत समिति का क्षेत्र, अधिकांश मामलों में विकेंद्रीकरण की योजना में इसके महत्वपूर्ण यूनिट होने के कारण, खंड स्तर के बराबर ही होता था। व्यवहार में उल्टी दिशा में बढ़ने की बात होती रही। न तो गुजरात और न ही महाराष्ट्र में लघु कृषक विकास एजेंसी या सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम या सघन जनजाति विकास परियोजना जैसी योजनाओं को चुनी हुई जिला परिषदों के दायरे में लाया गया। हस्तांतरित कार्यकलापों के कार्यान्वयन की प्रक्रिया में, राज्य सरकार ने जो आदेश और निदेश जारी किए, उनके कारण आगे चलकर आनुषंगिक कानून बनते चले गए और इनसे निर्वाचित निकायों के निर्णय लेने के अधिकारों में कमी होती गई। राज्य द्वारा जिला स्तर या इससे भी नीचे के निकायों के लिए जो स्टाफ दिया गया, उसमें आगे चलकर अधिकतर कर्मचारी ऐसे होते थे जिनकी राज्य सरकार की जरूरत नहीं होती थी। योजना के लिए निर्धारित संसाधनों में कमी करने की प्रवृत्ति रही और इससे भी पंचायती राज की अवनति हुई। अंतिम कारण यह था कि पंचायती राज की संस्थाओं के लिए जो संसाधन सोचे गए, वह बहुत कम थे और उनका भी इन संस्थाओं द्वारा पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया गया।

पंचायती राज संस्थाओं के ढांचे की कमियां

जैसे-जैसे विकास कार्यक्रमों को पंचायती राज संस्थाओं के कार्य-क्षेत्र से बाहर रखने की मांग जोर पकड़ती गई, वैसे-वैसे इन संस्थाओं को मजबूत बनाने की इच्छा-शक्ति कम होती गई। बीजों की सप्लाई, रासायनिक खाद के वितरण, लघु सिंचाई के सम्बर्द्धन या सिविल सप्लाई अधिनियमों को लागू करने, अनाज की वसूली अथवा अन्य कल्याण-कार्यों के कार्य-निष्पादन के लिए वर्ष भर ऐसे तीव्र प्रयासों की आवश्यकता रही कि नीचे के स्तर पर लगभग सारा स्टाफ ही मूल विभागों द्वारा वापस मांगा जाता रहा।

नौकरशाही की भूमिका

पंचायती राज संस्थाओं को विकास की प्रक्रिया से अलग करने में नौकरशाही की सम्भवतः अपनी एक खास भूमिका रही है। कई कारणों से उनका बोध इस प्रकार अनुकूलित हुआ। वे पदानुक्रम की प्रणाली को संगठनात्मक सिद्धांत के रूप में स्वीकार करते रहे। अधिकारी यह अनुभव करते रहे कि वह वित्तीय प्राथमिकताओं के परिणाम दिखाने के लिए प्रमुख रूप से राज्य सरकारों के प्रति उत्तरदायी थे। सरकारी कर्मचारी अपने ही वर्ग के लोगों में विश्वास करते रहे। इसलिए एक तरफ तो पंचायती राज संस्थाओं को अतिरिक्त कार्यकलाप सौंपने की बात नहीं माने, दूसरी तरफ निर्वाचित प्रतिनिधियों की देखरेख में काम करने के लिए अपने आपको आसानी से तैयार नहीं कर सके। नए विकास कार्य और उनका बोझ भी इतना बढ़ गया कि नौकरशाही ने सारा वह स्टाफ मांग लिया जो कि खंड के लिए उपलब्ध था। इसके अलावा स्टाफ को वापस बुलाने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों का निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रभाव कम होता गया और दूसरी ओर सचिवालय या अन्य विभागीय अध्यक्षों का प्रभाव बढ़ता गया। क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों के मार्ग में एक बाधा यह भी रही कि निर्वाचित प्रतिनिधियों ने भी उन्हें अपना समझकर उनके साथ काम नहीं किया।

राजनीतिक इच्छा शक्ति का दुर्बल होना

पूरे राष्ट्रीय परिदृश्य को देखने से यह पता चलता है कि पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकलाप बहुत कम रहे, उनके संसाधनों का आधार बड़ा कमजोर था और उनकी तरफ बहुत कम ध्यान दिया गया। इस प्रकार पंचायती राज प्रणाली का कार्यकरण उत्साहहीन हो गया। इसके अलावा कुछ राज्य सरकारों ने चुनाव करने भी स्थगित कर दिए अथवा कोई न कोई कारण बताकर पंचायती राज संस्थाओं के ढांचे में से एक न एक महत्वपूर्ण स्तर को हटा दिया। इस संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उच्च स्तर पर राजनीतिक विशिष्ट वर्ग की प्रवृत्ति नीचे के स्तर पर लोकतंत्रीय प्रक्रिया को मजबूत बनाने के प्रति अनुकूल नहीं रही। इस सिलसिले में कुछ राज्यों में संसद सदस्यों तथा विधानसभाओं के सदस्यों का पंचायती राज के प्रति उदासीन हो जाना विशेष महत्व रखता है, क्योंकि वे अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों में पंचायती राज के कारण उभरने वाले नए नेतृत्व से अपनी स्थिति के लिए खतरा महसूस करने लगे थे। अंतिम रूप से यही विश्लेषण किया जा सकता है कि इस सबके परिणामस्वरूप पंचायती राज संस्थाओं के प्रति राजनीतिक समर्थन कमजोर पड़ गया और इनके जरिए काम करने की प्रशासन की इच्छा-शक्ति भी ढीली पड़ गई।

संकल्पनात्मक स्पष्टता का अभाव

सबसे बुरी बात यह हुई कि पंचायतीराज की संकल्पना

और इसके उद्देश्यों की स्पष्टता का अभाव रहा। कुछ व्यक्तियों ने तो इसे प्रशासन की एक एजेंसी के रूप में माना, जबकि कुछ दूसरों ने नीचे के स्तर पर इसे लोकतंत्र का विस्तार माना। कुछ दूसरे लोगों ने इसे स्थानीय ग्रामीण शासन का घोषणापत्र माना। इसमें सबसे बड़ा कुचक्र यह है कि पंचायतीराज संस्थाओं संबंधी सभी संकल्पनाएं साथ-साथ बनी हुई हैं और भले ही कुछ समय के लिए ही सही, यह एक दूसरे के प्रतिकूल थी। इनमें किसी को भी गम्भीरता से अमल नहीं किया जा सका और इसी वजह से इस क्षेत्र में आशाएं पूरी नहीं हो पाई।

ढांचे तथा कार्यों के संबंध में निराशा के कारण

सामान्यतः पंचायती राज संस्थाओं के कार्य से लोगों को निराशा हुई है और यह कई कमियों और असफलताओं के कारण है। पंचायती राज संस्थाओं पर आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से प्रभावशाली वर्गों का प्रभुत्व रहा है। इस प्रकार कुलीनतंत्र की शक्तियों को आगे आने में मदद मिली है और उन्होंने कमजोर वर्गों को कोई लाभ नहीं होने दिया है। पंचायती राज संस्थाओं का कार्य-निष्पादन राजनीतिक गुटबाजी से भी दूषित हुआ है। इससे या तो विकास रुका है या कम हुआ है। भ्रष्टाचार, अकुशलता, कार्यविधियों के प्रति उदासीनता, रोजमर्रा के प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप, लोकसेवा के स्थान पर संकुचित निष्ठाएं, विशेष प्रयोजनों के लिए किए गए कार्य और शक्तियों का केंद्रीकरण—इन सभी कारणों से गांवों के औसत आदमी के लिए पंचायती राज का उपयोग बहुत कम रह गया है। इसके साथ-साथ यह दलील भी दी गई है कि योजना बनाने और उसके कार्यान्वयन का काम विशेषज्ञों का मामला है और इसके लिए बड़ी जल्दी और बड़े जटिल तरीके से ब्यौरे इकट्ठे करने होते हैं, इसलिए एक तरफ तो पंचायती राज निकायों की स्थिति से विकास संबंधी प्रशासन के कार्य की गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और दूसरी तरफ समन्वय की समस्याएं पहले से जटिल हो गई हैं।

प्रणाली की उपयुक्तता

इस प्रकार के निराशापूर्वक मूल्यांकन से सभी सहमत नहीं हैं। बहुत से लोगों का यह मत है कि मूलतः प्रणाली ठीक है, लेकिन वे इसमें आवश्यक सुधार करने पर बहुत जोर देते हैं। वे अनुभव करते हैं कि कुलीनतंत्रीय तत्वों का प्रभुत्व एक ऐसा रोग है जो राजनीतिक प्रणाली पर बुरा असर डालता है और अन्य स्तरों पर भी विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन को दूषित करता है। आधुनिकीकरण के एक भाग के रूप में लोकतंत्रीयकरण की प्रक्रिया से आगे चलकर दीर्घावधि में परम्परागत नेतृत्व अस्थिर हो जाना चाहिए। तथापि, हमें इस प्रक्रिया से होकर गुजरना है और यह कोई छोटा रास्ता नहीं है। इस प्रकार जो वर्ग अपना प्रभुत्व जमाकर बैठे हैं उनके प्रभाव को कम करने का एक ही रास्ता है, और वह है नियत समय पर इन मामलों को लेकर जनमत के सामने उपस्थित होना। तथापि, यही पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा और उनकी सक्रिय सहभागिता के लिए भी अन्य उपाय और व्यवस्था करनी होगी। इसके अतिरिक्त, जहां कमजोर वर्गों के हितों की ओर ध्यान न दिए जाने का प्रश्न है, इसके लिए केवल पंचायती राज संस्थाओं को ही दोष नहीं दिया जा सकता। भारत सरकार ने 1970 तक कमजोर वर्गों के पक्ष में जयप्रकाश नारायण समिति द्वारा 1961 में दिए गए सुझावों पर अमल नहीं किया। 1970 में जाकर सामाजिक न्याय के साथ विकास के नारे के रूप में इसे अपनाया गया। इस संबंध में यह दलील भी दी गई है कि गुटबाजी और दलगत राजनीति के संबंध में जरूरत से ज्यादा चिन्ता प्रकट करने से यही होता है कि लोकतंत्रीय समाज में प्रतियोगिता की राजनीति की बात पूरी तरह स्वीकार नहीं की जाती। इसके अलावा यह भी कहा गया है कि भ्रष्टाचार और अकुशलता की समस्याएं समाज में सन्निहित हैं और कोई भी इनसे बचा नहीं है। प्रक्रिया संबंधी अनियमितताओं के संबंध में भी यही बात सही है। इसी प्रकार सामान्य कारक, जैसे कि सामाजिक वातावरण, परिस्थितियों का दबाव, अभाव की स्थिति, तेजी से बदलते हुए परिवेश के साथ सामंजस्य न कर पाना, अपर्याप्त जानकारी और इसी प्रकार के अन्य कारण बड़े व्यापक हैं और इनका असर राजतंत्र के सभी पहलुओं में विद्यमान है। केवल पंचायती राज को ही आलोचना, असफलता और अन्य कमियों के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

पंचायती राज प्रणाली को अवसर नहीं दिया गया

उपरोक्त साक्ष्य से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि योजना तथा विकास के क्षेत्र में पंचायती राज संस्थाएं असफल रही हैं। यह सच है कि पंचायती राज संस्थाएं भौतिक तथा मानवीय साधनों का स्थान नहीं ले सकती। उदाहरण के तौर पर कृषि विकास के लिए जरूरी साधन सिंचाई सुविधाएं, चकबंदी, नियमित मंडियां, सहकारिताओं

का जाल, संचार प्रणाली का विकास, और इन सबसे बढ़कर कृषि व्यवसाय पर गर्व कर सकने वाले किसान हैं और पंचायती राज संस्थाएं किसी भी तरह इनके अभाव की पूर्ति नहीं कर सकतीं। पंजाब और हरियाणा के विकास की कहानी से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाएगी। लेकिन इसके साथ-साथ यह भी सच है कि यदि साधन सुलभ हों और तब पंचायती राज संस्थाओं को विकास प्रक्रिया में सहभागी बनाया जाए, तो योजना यथार्थ पर आधारित होगी, कार्यक्रम अनुभव की जा रही आवश्यकताओं की पूर्ति और जनता को दृष्टिगत रखकर निर्धारित की गई प्राथमिकताओं के अनुसार बनाए जाएंगे और उनके कार्यान्वयन में जनता भाग लेगी और उसका सहयोग भी मिल सकेगा। दरअसल पंचायती राज संस्थाओं को भारत के ग्रामीण क्षेत्र में विकास के प्रमुख दस्ते के रूप में काम करने का मौका ही नहीं दिया गया है। जहां-कहीं भी उन्हें महाराष्ट्र और गुजरात की तरह कुछ सीमित जिम्मेदारी भी सौंपी गई हैं, उन्होंने इसे भली प्रकार निभाया है।

विकेंद्रीकृत जनतंत्र के लाभ

सारांश में हम यह कह सकते है कि यह सोचना गलत होगा कि पंचायती राज सर्वथा असफल रहा है। इसकी उपलब्धियां अनेक हैं। राजनीतिक दृष्टि से इसने भारतीय भूमि में लोकतंत्र के बीजारोपण का काम किया है और एक औसत नागरिक को पहले से अधिक अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाया है। प्रशासनिक दृष्टि से इसने कुलीन नौकरशाही वर्ग और जनता के बीच की खाई को पाटा है। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से इसने नया नेतृत्व पैदा किया है, जो कि केवल आयु की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम उम्र का है बल्कि दृष्टिकोण में अधिक आधुनिक और सामाजिक परिवर्तनों का पक्षधर भी है। अंत में हम यह कह सकते हैं कि विकास की दृष्टि से इसने ग्रामीण जनता के मन में विकास की भावना जागृत करने में मदद की है।□

पंचायती राज समिति रिपोर्ट, 1978 से उद्धृत।

पंचायती राज: दृष्टिकोण तथा सिफारिशें

पंचायती राज संस्थाओं के ढांचों का गठन, उनके कार्य तथा वित्तीय प्रशासनिक और मानवीय संसाधनों का उपयोग, ग्रामीण विकास के प्रबंध की उत्पन्न होने वाली कार्यात्मक आवश्यकता के आधार पर निश्चित होना चाहिये। अपनी रिपोर्ट में हमने, विभिन्न प्रकार की रिपोर्टों के कुछेक मदों के सम्बन्ध में सामान्यत: की गई तथा अब तक प्रकाश में लाई गई विशेषताओं की अपेक्षा प्रगति की दिशा को अधिक महत्व दिया है। हमारी राय में पंचायती राज की संस्थागत रचनात्मक तथा कार्यात्मक विशेषतायें समय तथा स्थान के अनुसार बदलती हैं। हम केवल सम्भावनाओं की ओर इंगित कर सकते हैं। जबकि विभिन्न राज्य सरकारों को अपनी बदलती हुई आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वास्तविक ब्यौरे तैयार करने होंगे। भले ही विभिन्नतायें हों, किन्तु उन्हें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संस्थाओं को सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित आर्थिक विकास के निर्णायक प्रकरण के अनुरूप होना चाहिए।

इस दृष्टिकोण में, रुख का पता लगाने तथा भविष्य के लिये मार्गदर्शन तैयार करने के अतिरिक्त यह आवश्यक नहीं है कि अतीत के सम्बन्ध में लम्बी चौड़ी व्याख्या की जाये। पंचायती राज संस्थाओं से विकास के बढ़ते हुए तथा मिश्रित कार्यक्रमों का विलग हो जाना, निर्वाचित निकायों के माध्यम से कार्यक्रम निष्पादन की प्रक्रिया से स्वयं को ढालने में नौकरशाही की अक्षमता, इन संस्थाओं को प्रोत्साहित करने में राजनैतिक इच्छा की कमी, पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकरण में अनेक आन्तरिक कमियां और इन सबसे अधिक स्वयं संकल्पना के बारे में स्पष्टता की कमी ने समस्त प्रणाली को कमजोर बनाया है।

कुछ हद तक निराशा इस बात से पैदा होती है कि पंचायती राज को महत्वपूर्ण कार्य नहीं सौंपे गये हैं और उन्हें निरन्तर अवसर तथा उत्साह प्रदान नहीं किया गया है। विकासात्मक कार्यक्रम उसके माध्यम से नहीं चलाये गये। पंचायती राज की अनेक उपलब्धियां भी हैं। इन्होंने भारतीय भूमि में लोकतन्त्र के बीजारोपण का काम किया है, कुलीन नौकरशाही वर्ग और जनता के बीच की खाई पाटी है तथा एक नया नेतृत्व पैदा किया है, जो न केवल आयु की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम उम्र का है, बल्कि दृष्टिकोण में अधिक आधुनिक एवं सामाजिक परिवर्तनों का पक्षधर है।

पंचायती राज, राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर लोकतंत्र की भांति साध्य तथा साधन दोनों है। साध्य के रूप में यह लोकतंत्र का एक अनिवार्य विस्तार है, साधन के रूप में यह राष्ट्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा इसे सौंपे गये कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिये उत्तरदायी बना रहेगा। कुल मिलाकर साध्य तथा साधक, दोनों के रूप में पंचायती राज को ग्रामीण भारत के समृद्ध तथा लाभप्रद जीवन के दर्शन तथा व्यवहार में योगदान देना चाहिये।

राज्य सरकार से नीचे लोकतन्त्रीय निकायों की स्थापना राजनैतिक तथा सामाजिक विकास के सन्दर्भ में अनिवार्य है। सभी स्तरों पर आवधिक चुनावों के साथ लोकतन्त्रीय संस्थायें बहुत बड़ी संख्या में कमजोर वर्गों की शक्ति के दावों के लिये मंच सुलभ करती है। विभिन्न स्तरों पर पर्याप्त अधिकार रखने वाले राजनैतिक लोगों तथा दलों के होने से राजनैतिक दोषारोपण के स्थान पर राष्ट्रीय शक्ति राजनैतिक दलों के बीच विकासात्मक गतिविधियों में ठोस प्रतियोगिता तथा पारस्परिक सहयोग पैदा करती है।

राज्य सरकार से स्थानीय निकायों को पर्याप्त अधिकार हस्तान्तरित करने के बारे में हमारी सिफारिश, केन्द्र तथा राज्यों के बीच अधिकारों के वितरण की वर्तमान योजना से संबंधित है जिसके लिये अलग से विस्तारपूर्वक विचार की आवश्यकता होगी। पंचायती राज की संस्थागत रचनात्मक तथा कार्यात्मक रूपरेखा केवल विकास की द्रुतगामी गति से ही

नहीं, वरन उसकी नीति तथा पद्धति के अनुरूप होनी चाहिये। विकास प्रशासन अथवा स्थानीय स्तर के विकास प्रबन्ध के नए ढांचे में चल रहे विकास के प्रतिबल की कार्यात्मक आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना होगा। अतः पंचायती राज संस्थाओं को आगामी दशकों में ग्रामीण जीवन के सभी क्षेत्रों में तीव्र परिवर्तनों, निरन्तर विकास तथा स्थाई नवीनताओं की परिस्थितियों में लोकतांत्रित विकास प्रबन्ध को हाथ में लेने के लिये सुसज्जित किया जाना चाहिये।

ढांचा, संरचना तथा चुनाव

पंचायती राज के लिये संस्थागत संरचना में चल रहे विकासात्मक प्रतिबल को प्रेरणा देने की कार्यात्मक आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिये और उसे स्थानीय जरूरतों के अनुसार लोगों तक पहुंचाया जाना चाहिये।

विकास की गतिशीलता के उदीयमान विधान के अनुसार राज्य से नीचे के स्तरों पर उच्च योग्यता वाले तकनीकी विशेषज्ञों की आवश्यकता है जिससे कि ग्रामीण विकास की गति को स्थाई रूप दिया जा सके, जो अनेक मामलों में जिला स्तर पर पहले ही प्रशासनिक तरीके से विकेन्द्रीकृत की जा चुकी है। अतः अनिवार्य आवश्यकता इस बात की है कि जिला स्तर से नीचे, लोकप्रिय पर्यवेक्षण के अधीन विकेन्द्रीकरण का प्रथम स्थल होना चाहिये।

पंचायती राज के विभिन्न स्तरों की रचना के बारे में हम केवल एक विस्तृत प्रतिमान का सुझाव देना चाहेंगे। तथापि, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि चाहे रचनात्मक प्रबन्ध कुछ भी हो, परन्तु सभी स्तरों पर अन्यों के ऊपर प्रत्यक्ष निर्वाचितों की प्रधानता होनी चाहिये। चुनावों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को उनकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। तथापि, जिला परिषद के चेयरमैन तथा मण्डल पंचायत के अध्यक्ष अप्रत्यक्ष रीति से चुने जा सकते हैं। सभी निर्वाचित स्तरों की कार्यावधि चार वर्ष होनी चाहिये और जहां तक संभव हो इन निकायों के चुनाव साथ-साथ कराये जाने चाहिये। जिला परिषद में छः प्रकार के सदस्य होने चाहिये, अर्थात् उपयुक्त रूप से लोकतांत्रिक निर्वाचित प्रभागों से निर्वाचित सदस्य, पदेन आधार पर पंचायत समितियों के अध्यक्ष, इनके नामित (क) बड़ी नगरपालिकाओं, और (ख) जिला स्तरीय सहकारी संघ, दो महिलाएं जिन्होंने जिला परिषद चुनावों में अधिकतम मत प्राप्त किये हों (यदि चुनाव के लिये कोई महिला सामने न आयें तो दो महिलाओं को सहयोजित कर लिया जाये) और दो सहयोजित सदस्य – एक वह जो ग्रामीण विकास में विशेष रुचि रखता हो और दूसरा विश्वविद्यालय कालेज के अध्यापकों में से एक। जिला परिषद का चेयरमैन सभी सदस्यों द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित तथा पदेन सदस्यों में से निर्वाचित किया जायेगा।

जिला परिषद अनेक कमेटियों के माध्यम से कार्य करेगी, इनमें से अधिक महत्वपूर्ण कृषि, शिक्षा, लघु उद्योग, वित्त तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिये गठित की जायेंगी। सभी कमेटियों का संगठन आनुपातिक आधार पर होगा ताकि सभी वर्गों तथा विचारों से लोगों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके। इन कमेटियों के अध्यक्षों की एक कमेटी जिला परिषद की स्थाई कमेटी के रूप में कार्य करेगी। जिला परिषद के सभी सदस्य और संबंधित जिले के विधान सभा सदस्य, विधान परिषद सदस्य तथा संसद सदस्य जिला स्तर पर योजना बनाने तथा आवधिक समीक्षा के लिये आयोजन कमेटी गठित करेंगे। शिक्षा कर्मचारियों की स्थानान्तरण जैसी समस्याओं से संबंधित एक उपयुक्त कमेटी गठित की जायेगी जिसमें जिला परिषद के सदस्य, राज्य सरकार का एक प्रतिनिधि तथा जिला शिक्षा अधिकारी होंगे, जो स्थानान्तरण तथा नियुक्तियों में समानता तथा पद्धति निश्चित करेगी।

यह विचार है कि न्याय पंचायतों को पृथक निकायों के रूप में रखा जाना चाहिये और उन्हें विकास पंचायतों के लिये निर्वाचित लोगों के साथ नहीं मिलाया जाना चाहिये। विकास पंचायतों के सदस्य कार्यकारी अधिकार रखते हैं और यदि दोनों कार्य जोड़ दिये जाते हैं तो न्याय को क्षति पहुंचने की संभावनायें हैं। समिति पृथक निर्वाचित न्याय पंचों की बेंच की अध्यक्षता के लिये एक योग्य न्यायाधीश के संयोजन के पक्ष में है। निर्वाचित न्याय पंच दुबारा चुनाव लड़ने के अधिकारी नहीं होंगे। उन्हें उस क्षेत्र के अलावा, जहां से वे चुने गये हैं, कार्य करना चाहिये।

पंचायती राज के चुनाव राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी द्वारा मुख्य चुनाव आयुक्त की सलाह से किये जाने चाहियें।

राज्य सरकार को पक्षपात के आधार पर पंचायती राज संस्थाओं को सुपरसीड नहीं करना चाहिये और यदि उनका प्रतिस्थापन आवश्यक हो जाता है तो छः महीने के भीतर किसी निर्वाचित निकाय से किया जाना चाहिये। राज्य सरकारों को पंचायती राज के चुनावों को स्थगित नहीं करना चाहिये। पंचायती राज चुनावों में राजनैतिक दलों की भागीदारी विकास कार्यक्रम के प्रति स्पष्ट रूप से अभिमुख होना सुनिश्चित करेगी। कार्यक्रमों पर आधारित प्रत्यक्ष चुनाव से कमजोर वर्गों को राजनैतिक ढांचे द्वारा दिये जा रहे अनेक अवसरों से लाभ उठाने का मौका मिलेगा और उच्चतर स्तर की राजनैतिक प्रक्रिया के साथ और अधिक स्वस्थ सम्पर्क को सुविधाजनक बनायेगी।

कार्य

पंचायती राज संस्थाओं को सौंपे गये कार्य बहुत अधिक विशिष्ट होने के कारण अखिल भारतीय दृष्टिकोण से कार्यों की विस्तृत सूची का अधिक परिचालनात्मक औचित्य नहीं रहेगा। विकास कार्यक्रमों की स्थानीय प्राथमिकतायें सब क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न हैं और इसलिये यह आवश्यक है कि राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों को, कार्य प्राथमिकताओं की अपनी निजी सूची बनाने के लिये, पर्याप्त अवसर दिये जाने चाहियें।

एक जिले से सम्बन्धित सभी विकास कार्य, जो राज्य सरकार द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, जिला परिषदों को सौंपे जायेंगे, जो इस प्रकार से विकेन्द्रीकृत किये जा सकने वाले कार्यों में कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र, स्वास्थ्य, शिक्षा, संचार, ग्रामीण उद्योग, विपणन, पिछड़े वर्गों का कल्याण, परिवार कल्याण आदि शामिल हैं। इन शीर्षों में भी कुछ भाग राज्य सरकार के पास रहेंगे। अतः इस प्रकार के कार्य जैसे कृषि अनुसन्धान, कालेज और विश्वविद्यालय शिक्षा, मध्यम सिंचाई परियोजनाएं तथा इसी प्रकार की दूसरी मदें, जो थोड़े जटिल प्रकार की हैं अथवा जो जिलों की परिधि में नहीं आती हैं, जिला परिषदों को न सौंपी जायें।

पंचायती राज संस्थाओं को विकास कार्य सौंपना तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक कि पंचायती राज संस्थाओं को स्वयं निर्णय लेने और अपनी निजी आवश्यकताओं के अनुसार कार्यक्रम बनाने का अधिकार उन्हें न सौंपा जाएगा। अतः योजना बनाना जिला परिषदों का महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए।

मंडल पंचायतों के कार्यों को नये दृष्टिकोण से देखना होगा। ये पंचायतें, जिला परिषद द्वारा सौंपी गई अनेक योजना तथा परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार होंगी। उन्हें सामूहिक कार्यों को गतिशील बनाने, संगठन बनाने तथा परियोजना तैयार करने की मुख्य भूमिका अदा करनी होगी। पंचायती राज संस्थाओं को सामान्य रूप से तथा मंडल पंचायत को विशेष रूप से इस सम्बन्ध में म्युनिसिपल तथा कल्याण कार्यों के क्षेत्र में राज्य योजना परिव्यय में पूरक सहायता में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। ये आवश्यकतायें इतनी स्थानीय हो सकती हैं कि वे आर. एम.एन.पी. जैसे व्यापक कार्यक्रमों के अन्तर्गत भी न आ सकें।

विकास तथा संक्रमण की तीव्र गति को ध्यान में रखते हुए नियामक कार्य कलेक्टर द्वारा ही किए जाने चाहिए। किन्तु ऐसे नियामक कार्य, जो विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिये उपयुक्त हैं, पंचायती राज के उचित स्तर को सौंपे जाने चाहियें। इसके अलावा, पंचायती राज संस्थाओं के कार्यचालन को प्रोत्साहित तथा सुविधाजनक बनाने के लिये राजस्व विभाग को इनके प्रति अभिमुख बनाया जाना चाहिये।

मंडल पंचायतों को उत्पादन केन्द्रों के साथ उचित रूप से समन्वित किया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में अन्य संस्थाओं के सहयोग से उन्हें विपणन, निवेश, आपूर्ति, ऋण तथा सेवा और कल्याण की जरूरतों से संबंधित आवश्यक निर्णय लेने होंगे। समय के साथ परियोजना के कार्यान्वयन के लिये मंडल पंचायत बुनियादी संस्था होगी तथा वह न केवल खण्ड कार्यों को ही अपने हाथ में लेगी, वरन् निचले स्तरों पर उच्च स्तर के तकनीकी विशेषज्ञ उपलब्ध कराए जायेंगे।

आयोजन

आर्थिक आयोजना के लिये जिला महत्वपूर्ण होने के कारण, जिला स्तर पर योजना बनाने का दायित्व जिला परिषद का होना चाहिये। कुल संसाधनों में वृद्धि, ऋण उपलब्धता तथा आवश्यक योजना बनाना, जिसमें अनेक खण्ड शामिल

हैं, सभी जिला स्तर पर संभव होंगे। निर्वाचित जिला परिषद तकनीकी-आर्थिक योजनाओं में अत्यावश्यक सुधार लायेगी। खंड स्तर पर तैयार किए गए उत्पादन तथा रोजगार कार्यक्रम योजना की सम्पूर्णता का एक अंग होंगे।

राज्य सरकार को जिला आयोजन की प्रक्रिया में निरन्तर सहायता प्रदान करनी होगी। इसे सुनिश्चित करना होगा कि कमजोर वर्गों से संबंधित राष्ट्रीय लक्ष्यों को पंचायती राज संस्थाओं द्वारा आगे बढ़ाया जाए। उन्हें तकनीकी दल को वित्तीय तथा भौतिक प्रतिमान और तकनीकी सुविज्ञता भी प्रदान करनी होगी। इसे संसाधनों का उचित आबंटन तथा दीर्घकालिक प्राथमिकतायें भी सुनिश्चित करनी होंगी। कमजोर वर्गों के लिये निर्धारित संसाधनों के नए अवसरों का अधिकाधिक उपयोग किया जाना योजना प्रक्रिया का एक अंग होना चाहिये। इस संबंध में जिला सामाजिक न्याय समितियां काफी सहायक होंगी। जिला आयोजन की चल रही प्रक्रिया को अल्पकालीन कार्य योजनायें और ठोस परियोजनायें बनाने पर भी ध्यान देना चाहिये जिनमें स्थानीय संसाधनों का उपयोग, निर्धन तथा लक्षित समूहों वाले क्षेत्र शामिल होने चाहिए।

कमजोर वर्ग

समाज के कमजोर वर्गों के लाभ के लिये पंचायती राज संस्थाओं को यह सुनिश्चित करना है कि उन्हें पर्याप्त रूप में देश के सुनियोजित विकास के लाभ प्राप्त हों। पंचायती राज संस्थाओं की विकासात्मक भूमिका में उनका आत्मविश्वास तथा कार्यकरण में सहयोग अनेक उपायों के माध्यम से सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

संस्थागत उपायों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की संख्या के अनुपात में पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये हम निम्नलिखित बातों की सिफारिश करना चाहेंगे: (1) अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के साथ न्यायोचित व्यवहार करने के लिये सभी पंचायती राज संस्थाओं में उनका प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या के आधार पर होना चाहिये, (2) जहां अनुसूचित जनजाति जनसंख्या के अधिकांश भाग हैं, वहां आरक्षण का सिद्धांत निर्वाचित पदों पर भी लागू होना चाहिये, (3) आरक्षण प्रणाली को सामाजिक न्याय समितियों का गठन करके पूरा किया जा सकता है जिनमें अध्यक्ष केवल अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों से होना चाहिए।

विविध प्रकार के व्यवसायों के विकास कार्यक्रमों की अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिये अधिक मात्रा में प्रासंगिकता है, पंचायती राज संस्थाओं को डेरी, मुर्गी पालन, सूअरपालन, मछली पालन, झाड़ी-जंगल वनविद्या आदि जैसे क्षेत्रों में ग्रामीण इलाकों में इन व्यावसायिक धंधों को शुरू करने में शामिल किया जाना चाहिए।

पंचायती राज संस्थाएं जन संस्थाओं के रूप में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिये वित्त/विकास निगमों को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों पर आधारित विभिन्न कार्यक्रमों के लिये वित्तीय तथा तकनीकी सहायता प्रदान करने हेतु क्षेत्र आधार पर सहायता सुलभ कर सकती है।

राज्य सरकारों का उद्देश्यपूर्ण प्रशासनिक उपायों (सुरक्षात्मक तथा विकासात्मक दोनों) के माध्यम से यह सुनिश्चित करने का विशेष उत्तरदायित्व होना चाहिये कि नई टेक्नालोजी की मापक्रम तटस्थता कायम की जाती है, ऋण योग्य कार्यक्रमों के लिये समाज के कमजोर वर्गों में ऋण की गति सुगम बनाई जाती है और उनकी कुशलता का विकास लगातार प्रोत्साहित किया जाता है, पंचायतों तथा पंचायत समितियों के नियन्त्रण में अनेक भौतिक संसाधन अभी भी उपलब्ध हैं जिनका समाज के कमजोर वर्गों के लाभ के लिये पूरी तरह प्रयोग नहीं किया जा रहा है।

विभिन्न विकास कार्यक्रमों के बारे में, जिन्हें अब तक उपयोग में न लाये अथवा अपेक्षित साम्प्रदायिक संसाधनों के कमजोर वर्गों के लाभ के लिये कार्यान्वित किया जा सकता है, हम सामाजिक तथा फार्म वन-विद्या और खारे पानी में मछली पालन का विशेष उल्लेख करना चाहेंगे। खारे-पानी में मछली तथा झींगों के संयुक्त पालन में अत्यधिक आर्थिक संभावना है जिसे कमजोर वर्गों के लाभ के लिए आवश्यक काम में लाया जाना चाहिए। आरक्षित वनों तथा सुरक्षित वनों के अधीन उपयोग में लाये गये क्षेत्रों और गांवों तथा आरक्षित वनों के बीच के क्षेत्रों जहां विभिन्न सुविधा अधिकार सर्वाधिक हैं, को भूमिहीन श्रमिक को आबाद करने और पशुपालन को प्रभावी प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। ऐसी भूमि तथा जल संसाधनों के विकास को गरीब परिवारों के

साथ जोड़ने के लिये एक समय निर्धारित कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए जो पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से कार्यान्वित किए जायें।

प्रशासन

पंचायती राज संस्थाओं के प्रशासनिक संगठन को पुनर्गठित करने का हमारा मुख्य दृष्टिकोण यह है कि प्रशासन को नीति सम्मत निकाय से सुसज्जित करना चाहिए और इसकी रूपरेखाओं को ठीक करना चाहिए। राज्य सरकार के कार्यों का विकेन्द्रीकरण करने के साथ-साथ सभी जिला स्तर के अधिकारियों को जिला परिषदों तथा उनसे नीचे के स्तरों के अधीन रखना होगा। इस प्रकार विकेन्द्रीकरण आधार पर कार्य कर रहा एक अलग विकास प्रशासन संयुक्त जिला परिषद के सचिवालय के साथ विकसित होगा।

पंचायती राज संस्थाओं के लिये जिला स्तर के कार्यों का विकेन्द्रीकरण करने के बाद भी, राज्य सरकारें अपनी योजनाओं के निष्पादन के लिये कुछ जिला स्तरीय कर्मचारी वर्ग को बनाये रखेगी लेकिन कर्मचारी-वर्ग की द्विविधिता की सीमा राज्य कार्यों तक सीमित होगी जिन्हें जिला परिषद की शक्तियां विकेन्द्रीकृत करते समय निर्धारित किया जाएगा।

जिला कलेक्टर राज्य सरकार द्वारा सौंपे गये नियामक, राजस्व और अन्य कार्यों को करता रहेगा। वह 'सामाजिक लेखा परीक्षा' का आयोजन करेगा और उसमें सहायता भी करेगा। कलेक्टर की भूमिका की समीक्षा बाद में की जा सकती है, जब राज्य के कुछ नियामक कार्य जिला परिषद को हस्तांतरित किए जाने हैं।

विकास कार्यों की मात्रा में वृद्धि और उनकी बढ़ती हुई जटिलता के कारण विकासात्मक अपेक्षाओं का निरन्तर अध्ययन करने और पंचायती राज संस्थाओं की देखभाल करने वाले राज्य स्तर के विभागों के ढांचों तथा कार्यों का निर्माण करने की आवश्यकता है। पंचायती राज के लिये एक अलग मंत्रालय होना चाहिये।

एक नई प्रशासनिक संस्कृति के विकास के अंग के रूप में राज्य मुख्यालयों के विभागाध्यक्ष जिलों के अपने दौरे करते समय जिला परिषद के अध्यक्ष से भेंट कर सकते हैं जिससे कि उन्हें दौरे की आवश्यक विशेषताओं से अवगत करा सकें।

राज्य सरकार को स्वतंत्र एजेंसियों द्वारा, जिनमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली संस्थाएं और विश्वविद्यालय भी शामिल हैं, राज संस्थाओं के कार्यकरण का समय-समय पर स्वतंत्र मूल्यांकन कराने की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

भारत सरकार का भी ग्रामीण स्तर पर लोकतांत्रिक विकास- प्रबन्ध की प्रक्रिया को मजबूत बनाने का विशेष उत्तरदायित्व है। उन्हें यह सुनिश्चित करना है कि जिला क्षेत्र के विकास कार्यक्रम किसी भी रूप में पंचायती राज संस्थाओं से बाहर-बाहर न रहें। प्रशिक्षण सुविधाओं में वृद्धि जैसे सुझावों के मामले में केन्द्र से सही भूमिका निभाने की अपेक्षा करेंगे।

वित्तीय संसाधन

पंचायती राज संस्थाओं के लिए विभिन्न स्रोतों से निधियों के प्रवाह में वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया गया है, और संसाधनों को बढ़ाने के लिये अन्य राज्यों से कार्यविधियों को मजबूत बनाने अथवा प्रतिस्पर्धा बनाने हेतु संभावनाओं को निर्दिष्ट किया गया है। यद्यपि यह प्रक्रिया कुछ समय के लिये जारी रह सकती है, फिर भी इस बात पर बल दिए जाने की आवश्यकता है कि वित्तीय सुपुर्दगी -अथवा वित्तीय विकेन्द्रीकरण के लिये कोई प्रस्ताव परम्परागत दृष्टिकोण से प्रेरित नहीं होने चाहिये बल्कि विकास की गतिशीलता की तर्कसंगत आवश्यकताओं के लिये हमारी मौलिक वचनबद्धता से प्रकट होना चाहिए जिसमें जिला स्तर पर विकासात्मक क्रियाओं का एक बड़ा कार्य सौंपे जाने की स्पष्ट रूप से मांग की जाती है।

राज्य सरकार से बजट हस्तांतरण के अलावा, पंचायती राज संस्थाओं को भी स्वयं अपने काफी संसाधन जुटाने चाहिए। कोई भी लोकतांत्रिक संस्था बाहरी संसाधनों पर निर्भर रहते हुए अपनी प्रचालन स्फूर्ति नहीं बनाये रख सकती। इस प्रयोजन के लिए सभी पंचायती राज संस्थाओं के पास कराधान की अनिवार्य शक्तियां होनी चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं को कराधान शक्तियों की एक प्रवर सूची दी जानी चाहिए और उनमें से कुछ का अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। सभी राज्यों के लिये एक मानक सूची रखना संभव नहीं है। लेकिन गृहकर, व्यवसाय कर, मनोरंजन कर, भूमि तथा

इमारतों पर विशेष कर जैसे कुछेक कर उपयुक्त स्तर पर पंचायती राज-संस्थाओं द्वारा अनिवार्य रूप से लगाये जाने चाहिए। वसूल किए गए ऐच्छिक करों के लिये प्रोत्साहन दिए जा सकते हैं। ये प्रोत्साहन पुरस्कार अथवा अनुरूप अनुदानों का रूप ले सकते हैं।

करों के अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं को रोशनी, सफाई, जल आपूर्ति आदि जैसी सेवाओं के लिए शुल्क उगाहना चाहिए। एकरूपता के अभाव और मनमानेपन से बचने के लिये इन शुल्कों की निम्नतम तथा अधिकतम दर को निर्धारित किया जाना चाहिए। वर्तमान स्थिति में, भू-राजस्व पर उपकर, जल दर पर उपकर, स्टाम्प, शुल्क पर अधिमूल्य, मनोरंजन कर, प्रदर्शन कर आदि पंचायती राज संस्थाओं को सौंपे जाने चाहिए जिनमें अधिक प्रतिशत मंडल पंचायतों का है। स्थानीय पहल सुलभ करने के लिये पंचायती राज संस्थाओं को उपकरों में वृद्धि करने के लिये राज्य सरकार से अनुरोध करने हेतु कानूनी रूप से शक्तिशाली बनाया जाना चाहिए। अपनी निजी कराधान शक्तियों और पहले बताई गई कुछेक संभाव्यताओं के माध्यम से प्रभावित स्थानांतरों के अलावा, मण्डल पंचायतों को प्रति व्यक्ति एक स्थायी वार्षिक अनुदान उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

जब जिला स्तरीय योजना कार्यान्वयन से संबंधित सभी कार्य जिला परिषद को हस्तांतरित कर दिए जाएं तो इसमें परियोजना के साथ वित्त का हस्तांतरण भी शामिल होगा। इसके अलावा, जिला अथवा नीचे के स्तरों पर किया गया गैर-योजना व्यय भी संबंधित स्तरों के प्रशासन के अधीन होना चाहिए क्योंकि ये मिश्रित विकास कार्य और पंचायती राज संस्थाओं की क्षमताओं के निर्माण के लिए सहायक होगा। पंचायती राज वित्त निगम जैसे एक नये वित्तदायी निकाय की स्थापना से, जो आंशिक रूप से सार्वजनिक कर्जों पर निर्भर हैं, ऋण की कुल उपलब्धता में वृद्धि होने की संभावना नहीं है। इस संदर्भ में, ग्रामीण इलाकों के लिए ऋण की उपलब्धि को सुविधाजनक बनाने के लिए सभी वित्तीय-संस्थानों को अधिकाधिक ग्रामीण अभिमुख बनाना अपेक्षित है।

पंचायती राज संस्थाओं द्वारा अपनायी गयी बजट पद्धति आसान होनी चाहिए। राज्य सरकारों को भी बजट संबंधी पद्धति तैयार करनी चाहिए जिसमें पंचायती राज संस्थाओं के लिए विभिन्न प्रकार के स्थानांतरण निर्दिष्ट किए जाएं। स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक राज्य सरकार बजट की तैयारी तथा अनुमोदन के लिए अपने अधिकारियों तथा पंचायती राज संस्थाओं के प्रयोग हेतु विस्तृत मार्गदर्शन सिद्धांत तैयार करें।

राज्य सरकारों को पंचायती राज निकायों के वित्तीय तथा भौतिक निष्पादन के विषय में विधानमंडल की एक समिति गठित करने के बारे में विचार करना चाहिए। संकलित वित्त लेखाओं के साथ-साथ राज्य सरकार को पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित एक प्रशासनिक रिपोर्ट भी विधानमंडल के सभा-पटल पर रखनी चाहिए।

प्रस्तुति: मदन मोहन

पंचायती राज संबंधी अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट पर आधारित।

जी.वी.के. राव रिपोर्ट

पंचायती राज-अतीत, वर्तमान और भविष्य

संविधान के अनुच्छेद 40 भाग IV (राज्यों के नीति निदेशक सिद्धांत) में आधारभूत स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं के महत्व को मान्यता देते हुये यह कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए उपाय करेगा और उन्हें ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हो। राज्यों ने ग्रामों या ग्राम समूहों के लिए ग्राम पंचायतों की स्थापना की है। इन ग्राम पंचायतों के कार्य-कलापों में से एक नागरिक व आर्थिक कार्य-कलाप है।

वर्ष 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किया गया था और एक विकास प्रशासन के एकक के रूप में ब्लाक या खंड की स्थापना की गई थी। इसके बाद स्थानीय स्तर पर संवृद्धि और विकास की समस्याओं को हल करने के लिए राष्ट्रीय विस्तारण सेवा गठित की गई। खंड स्तर पर जनता का सहयोग मुख्यत: जनता के नामित प्रतिनिधि द्वारा लिया जाता था। यह देखा गया कि इस प्रकार जनता का सम्मिलित होना प्रभावी नहीं था और जनता का सार्थक सहयोग के लिए जिला स्तर के नीचे के स्तर पर प्रशासन के लोकतांत्रिक ढांचे का विकास करने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा।

वर्ष 1957 में बलवंत राय मेहता की अध्ययन समिति सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तारण सेवा कार्यक्रम का अध्ययन विशेष रूप से जनता के सहयोग का मूल्यांकन करने और ऐसी संस्थाओं के गठन के बारे में सिफारिश करने के लिए नियुक्त किया गया जिससे यह सहयोग प्राप्त हो सके। अध्ययन दल ने स्थानीय निकायों में आवश्यक स्रोतों, शक्ति और प्राधिकार को विकसित करने के लिए कानूनी चुनाव के संविधान की सिफारिश की और उनके नियंत्रण में विकेन्द्रित प्रशासन प्रणाली कार्य करने लगी। यह भी सिफारिश की गई कि प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण का मूल एकक खंड/समिति स्तर पर स्थापित होना चाहिए। अध्ययन दल एक गांव या गांव समूह के लिए चुनी गई पंचायतों पर सीधे ध्यान देगी। कार्यकारी निकाय को पंचायत समिति कहा जाता है जो सहयोजित सदस्यों के एक खंड से सीधे चुन कर आते हैं। सलाहकार समिति को जिला स्तर पर जिला परिषद कहा जाता है। जिसका अप्रत्यक्ष गठन निचले स्तर पर पदेन सदस्यों सहित कलेक्टर अध्यक्ष के रूप में होता है। राष्ट्रीय विकास परिषद ने प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया और सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य अपनी परिस्थितियों के मुताबिक संरचना करे जो उसके लिए हितकर हो। यह पंचायती राज्य प्रणाली' की उत्पत्ति थी जो राजस्थान से शुरू हुई जिसे भारत के संदर्भ में, स्वर्गीय पंडित जवाहर लाल नेहरू ने एक महान क्रांतिकारी और ऐतिहासिक कदम की संज्ञा दी।

पंचायती राज संस्थाएं, स्थानीय स्वशासन की इकाई होने के नाते, संविधान में राज्य के विषय हैं और राज्य और केन्द्र शासित क्षेत्र अपनी स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इनकी संरचना, शक्तियों व कार्य के अभिकल्पना के लिए स्वतंत्र हैं।

निस्संदेह ग्राम पंचायत के सदस्य सीधे चुनकर आते हैं दूसरे स्तर पर (भूत में) जहां खंड तहसील (असम को छोड़कर जहां उपमंडल स्तर है) स्तर पर विभिन्न मिश्रित प्रणालियां हैं। पांच राज्यों में सीधे चुनाव व्यवस्था है, उनमें से एक अप्रत्यक्ष चुनावी अंग भी है। पांच अन्य राज्यों में अन्य प्रतिनिधित्व सहित अप्रत्यक्ष चुनाव होते हैं। 6 राज्यों में मामले में इस स्तर पर इस निकाय निम्न और अन्य पंक्ति के पदेन सदस्यों द्वारा गठित किया गया है। तीसरी पंक्ति में जो जिला स्तर के नाम से जानी जाती है केवल 5 राज्यों में पदेन प्रतिनिधित्व और अन्य सदस्यों सहित इसके सदस्यों के प्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था है बाकी अन्य राज्यों में जिला स्तर निकाय का गठन निम्न पंक्ति और अन्य प्रतिनिधित्व से पदेन सदस्यता सहित किया गया है साथ में दो राज्यों में अप्रत्यक्ष चुनाव अंगों सहित। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाई गई पंचायती राज्य संस्थानों की संरचना में विस्तृत भिन्नता है सामान्यत: इन निकायों का कार्यकाल 5 साल है यद्यपि उनमें से 3,4 व 6 साल की अवधि के भी हैं।

पूरे देश में ग्राम पंचायतें लगभग 5.79 लाख बसे गांवों का 96 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या का 92 प्रतिशत का

प्रतिनिधित्व करती हैं। एक पंचायत के अधीन औसतन 2-3 गांव और 2,400 के लगभग जनसंख्या आती है। 4,526 पंचायत समिति (जो भी नाम कहा जाये) ब्लाक या तहसील स्तर पर देश में 88 प्रतिशत खंडों का प्रबंध करती है। एक पंचायत समिति औसतन लगभग 48 ग्राम पंचायतों को देखती है। 303 जिला परिषद (जो भी नाम दिया जाये) देश में लगभग 76 प्रतिशत जिलों की व्यवस्था देखती है और प्रत्येक जिला परिषद के पास औसतन 13.14 पंचायत समिति और लगभग 660 ग्राम पंचायतें आती हैं। सचमुच में वहां स्थानीय विस्तृत विभिन्नताएं भी हैं।

पंचायतों को आमतौर पर नागरिक सेवाएं, सार्वजनिक स्वास्थ्य की व्यवस्था व अनुरक्षण, सार्वजनिक निर्माण जैसे पानी की टंकी, स्थानीय सिंचाई कार्य सामुदायिक कुएं, ग्रामीण सड़कें व नालियों आदि का अनुरक्षण कार्य सौंपे गए हैं। कुछ राज्यों में वे प्राइमरी/बेसिक शिक्षा, कृषि उत्पादन में निवेश की व्यवस्था, शहरी उद्योग; प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा और चिकित्सकीय सहायता महिला तथा बच्चों के कल्याणकारी कार्यक्रम, सार्वजनिक चरागाहों व अन्य भूमि और निहित सम्पत्ति अनुरक्षण के लिए भी जिम्मेदार है। पंचायत समितियां साधारण तौर पर सौंपी गई। कई स्थानीय योजनाओं तथा कुछ कार्य अपने स्रोतों से भी करती है। जिला परिषदें साधारण तौर पर सलाहकारी निधि वितरण निकाय होती हैं, कुछ राज्यों में जहां कि समुचित मात्रा में निधि की व्यवस्था, उनकी स्थानीय आवश्यक योजनाओं को अपने स्तर पर निष्पादन करने के लिए की गई हैं।

पंचायती राज्य निकायों की आय की बड़ी धनराशि भूमि राजस्व, पानी का किराया या उन पर लगे अतिरिक्त अधिभार या उपकर से और कई उपादान राज्य सरकारों से प्राप्त होती है। कुछ राजस्व भवन कर, कृषि अयोग्य भूमि अथवा सम्पति के स्थानान्तरण पर टिकट शुल्क पर अधिभार या अन्य अनुज्ञप्त राज्य कर उनके निहित सम्पत्ति होती है। अन्य स्थानीय कर, शुल्क चुंगी, अनुज्ञप्ति शुल्क व्यापार, पेशे, उद्योग, जलपूर्ति, सफाई, बिजली, बाजार, हाटों, धार्मिक यात्रियों, मेले और त्यौहार प्रदर्शनियों, नाटक, सिनेमा प्रदर्शनी, रेस्ट हाउस, बस व ठेला स्टेड, गाड़ियां, जानवर, चरागाह , बूचड़खानों, घाटों, पुलों, चरागाहों, व्यावसायिक फसल आदि जो कि कई राज्य विधानों से अनुज्ञा प्राप्त होते हैं, काफी राजस्व नहीं कमाते और इस राजस्व का एक बड़ा हिस्सा ग्राम पंचायत स्तर पर प्राप्त होता है। कुछ राज्यों में पंचायत समिति और जिला परिषद को कर लगाने के अधिकार नहीं हैं।

वर्ष 1982-83 के आधार पर उपलब्ध आंकड़ों के अनुमान के अनुसार समस्त राज्य कर-राजस्व का 0.1 प्रतिशत पंचायती राज संस्थानों से वसूल हुआ था। कर और गैर कर आय (अनुदानों सहित) सभी राज्य के करों व गैर करों का 4 प्रतिशत और सभी राज्य कर और गैर कर राजस्व व पूंजी प्राप्तियों का 3 प्रतिशत पंचायती राज संस्थानों द्वारा वसूल की जाती है। सचमुच में पंचायती राज संस्थानों के स्रोत बहुत अपर्याप्त हैं जो उन्हें मिलती हैं व जिन पर आय होती है वे उन पर अपने कार्य को दक्षतापूर्वक नहीं कर सकते।

शुरू में बड़े जोर-शोर से इन संस्थानों का निर्माण हुआ और बाद में कुछ उल्लेखनीय अभियानों के बावजूद भी देश के कई भागों में इन संस्थानों का कार्य धीमा पड़ गया। अपर्याप्त साधनों के अलावा इन निकायों के चुनाव नियमित नहीं हुए। वास्तव में 11 राज्यों में पंचायती राज संस्थानों की एक और अधिक पंक्तियों में चुनाव कालातीत हो गये और 8 राज्यों में ग्राम पंचायतों के चुनाव भी नियत समय से आगे निकल गए। चुनावों को एक या दूसरे बहाने सूखा, बाढ़, आम चुनाव, सीमा निर्धारण आरक्षण आदि के अन्तर्गत टाल दिया गया और विद्यमान निकाय की अवधि बढ़ा दी गई या निकायों को हटा दिया गया। योजना का कार्य प्रजातंत्रीय विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को मजबूत बनाना और इस प्रकार की गतिविधियों को उन्नत करना है जिसे विभिन्न स्तरों पर कार्यान्वित और योजनाबद्ध हो सके और उन्हें अखंड ग्रामीण निकाय योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, जिला तथा खंड स्तरीय योजनाओं के निष्पादन में सभावित हो परन्तु अब न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम की केवल आंशिक सफलता रह चुकी है। जहां भी पंचायती राज निकाय कर्मठ रहे ग्रामीण विकास कार्यक्रम आशा के अनुरूप अच्छा रहे और योजनाओं के अधिकल्पन और लाभकारी चयन काफी संतोषजनक रहे।

यह स्वीकार किया जाता रहा है कि ग्रामीण विकास के कई कार्यक्रम वास्तविक और उद्देश्यपूर्ण बन जाते हैं। यदि जनता के प्रतिनिधि स्थानीय स्तर की योजनाओं में अभिकल्पनप्रतिपादन और कार्यान्वयन और गरीबी निरोधक

रोजगार कार्यक्रम के लाभकारी चयन में कर्मठ रहें। स्थानीय एवं क्षेत्र के लोगों की आवश्यकता महसूस की गई जो कि योजनाओं के द्वारा परिपूरित की गई है और जोकि स्थापित हो चुकी है, दक्षतापूर्वक कार्यान्वित की जा रही है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पंचायती राज संस्थानों के अतिरिक्त कोई अन्य माध्यम अच्छा नहीं है। इन संस्थानों को पुनः जीवन प्रदान करना, आवश्यक संबल शक्ति सम्पन्न करना होगा ताकि वे सौंपी गई जिम्मेदारियों को भली-भांति पूरा कर सकें।

समिति ने नोट किया है कि प्रधानमंत्री ने भी इस बारे में सभी मुख्य मंत्रियों को लिखा और अनुरोध किया है कि पंचायती राज निकायों के नियमित चुनाव जब भी निर्धारित हों, सम्पन्न कराएं और उन्हें पर्याप्त प्रशासनिक शक्तियों, वित्तीय सहायता और विकास प्रक्रिया में आम सहयोग की सुविधाएं प्रदान करें। यह केवल नियमित चुनाव के द्वारा क्रमित विद्यमान प्रजातंत्रीय रूप से स्थानीय निकायों के चयन व संचालन से आम राय उत्पन्न की जा सकेगी और स्थानीय निकायों, प्रभावित क्षेत्र के लोगों की आवश्यकता के लिए उद्देश्यरहित योजनाओं के कार्यान्वयन प्रक्रिया के लिए जिम्मेदार होंगे।

अशोक मेहता कमेटी ने वर्ष 1978 में स्थिति की समीक्षा की और विकसित न्यास के पथप्रदर्शन में पंचायती राज के लिए संस्थान के अभिकल्प की सिफारिश की और ग्रामीण विकास कार्यक्रम के कार्यन्वयन और तकनीकी उद्यम कार्य की आवश्यकता पर टिप्पणी की कि अपरिहार्य अनिवार्यता यह है कि राज्य स्तर से नीचे जनसंख्या पर्यवेक्षण के अन्तर्गत विकेन्द्रीकरण का पहला केन्द्र हो। जिले को व्यवहार्य प्रशासनिक एकक के रूप में मान्य हो जहां योजना, समन्वय और साधन युक्त आबंटन व्यवहार्य है और तकनीकी उद्यम की सुविधा प्राप्त हो। इस स्तर पर उच्च प्रसिद्धि नेतृत्व भी प्रकट हो सके।"

एफ.ए.ओ. के तत्वाधान में ग्रामीण विकास एवं कृषि सुधार पर वर्ष 1979 में विश्वव्यापी सम्मेलन हुआ जिसमें एक कार्यक्रम की सिफारिश की गई जिसमें संस्थानों का विकेन्द्रीकरण, सरकार की निर्णय लेने की प्रक्रिया और स्थानीय सरकार के संस्थानों का प्रतिनिधित्व, ग्रामीण विकास प्रतिनिधियों में निर्णय लेने का उत्तरदायित्व बढ़ाना संभावित है जो कि एक विशेष योजनाबद्ध मशीनरी प्रक्रिया एक राष्ट्रीय नीति ढांचे के अन्तर्गत लोग अपने क्षेत्र से संबंधित कार्यक्रमों के योजनाओं को कार्यरूप देना और विकास-युक्त गतिविधियों के कार्यान्वयन में सहयोग के योग्य बनाना है।

दो विशेषज्ञ दलों ने जिला स्तर या इससे निचले स्तर पर योजनाओं के जारी करने का परीक्षण किया जिसमें खंड स्तर पर प्रो. एम.एल. दांतवाला कार्यरत दल के प्रधान थे और जिला स्तर पर कार्यरत दल के प्रधान डा. सी.एच. हनुमंतराव, सदस्य योजना आयोग थे। दोनों समितियों ने खंड व जिला स्तर पर योजना के विकेन्द्रीकरण के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया और एक साथ धीरे-धीरे अपनी सिफारिशें तैयार कीं। दोनों ग्रुपों ने सिफारिश की थी कि योजना का विकेन्द्रित आधारभूत कार्य जिला स्तर पर किया जाए। जिला स्तर योजना के विशेषज्ञ दल ने यह टिप्पणी की कि जिला योजना का संस्थानिक ढांचा निर्णय लेने का अधिकार सामाजिक स्तर पर होना चाहिए जो कि प्रशासनिक क्षमता, योजना विशेषज्ञता का स्थानीय स्वायत का खुशहाल तरीका हो।

सातवीं योजना में विकास का उद्देश्य गरीबी की समस्या, बेरोजगारी व क्षेत्रीय असंतुलन पर सीधे हमला करना था। इसकी सफलता एक ओर योजनाओं का विकेन्द्रीकरण, प्रशासनिक विकास के लिए प्रभावी कदम उठाना और दूसरी ओर बुनियादी स्तर पर संस्थानों गरीब के संगठनों के साथ-साथ स्वैच्छिक अभिकरणों के चुने हुए लोगों का सम्मिलित होकर कार्यान्वयन प्रक्रिया में सहयोग देना है जोकि गरीबी के स्तर उठाने के कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने में सहायता देगी और स्थानीय आवश्यकताओं से जुड़े क्षेत्रीय विकास के कार्यक्रमों को एकरूप देकर असमानताओं को कम करेगी। प्रजातांत्रिक और विकेन्द्रीकरण दोनों ग्रामीण विकास के लिए अनिवार्य हैं। इसके अलावा ग्रामीण गरीब लोगों की जागरूकता को जगाने का और विकल्प नहीं है। इसे ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद के नीचे के प्रतिनिधित्व प्राप्त संस्थाओं का संभावित और कार्यशील होने में, ग्राम विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में और गरीबी संचालन में स्रोतों के प्रयोग के एकरूप तरीका होगा। यह विशेष रूप से गरीबी और जरूरतमंद आवश्यकता की व्यवस्था विशेष कार्यक्रमों के विषय पर जोर देता है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम, क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम

में—आवश्यक था जिसका उद्देश्य संस्थागत सामाजिक, आर्थिक सुविधाओं की व्यवस्था करना है। खंड स्तरीय मशीनरी का गठन क्षेत्र के समस्त विकास को ध्यान में रखते हुए एकीकृत संरचना देने में प्रशासन के विकास में शानदार कदम था। परन्तु कुछ सालों के बाद खंड व जिला स्तर दोनों पर विभागीय कार्यसंचालकों के विस्तारण सहित क्षेत्रीय और विशेष कार्यक्रमों की बहु-उद्देश्यीय भूमिका कम होती गई। उनके कार्य में तालमेल का कम होना और गतिविधियां अधूरी और नियंत्रित हो गईं। जबकि आई.आर.डी.पी. के अन्तर्गत जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों का बन्दोबस्त और खंडों के मजबूती ने पूरा सहयोग व एकीकृत आवश्कयता का परिणाम नहीं निकला। यहां कई उदाहरण हैं जिससे योजना/कार्यक्रम जो कुछ लक्ष्य वर्ग या कुछ भौगोलिक क्षेत्र पर उद्देश्यरहित थे स्वतंत्र अभिकरणों द्वारा सभी असहयोजित तरीकों से योजना कार्यान्वित किए गए। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम दो प्रमुख हैं जिनकी योजना और जिनका कार्यान्वयन विकास के अन्य कार्यक्रमों और आधारभूत व्यवस्था के साथ निकट समन्वय और समेकित रूप में किया जाना चाहिए। इस क्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर समन्वय का स्पष्ट अभाव दीखता है। स्थानीय आधार पर समेकित योजना तैयार करने के बारे में सामुदायिक विकास और पंचायती राज संस्थाओं की बहुत ही सीमित और अहम भूमिका रही है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में भी सामाजिक न्यायपूर्वक संवृद्धि और गरीबी उन्मूलन पर जोर दिया गया है। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि जब संवृद्धि अधिक समय तक बनी रहती है तब गरीबी कम होना शुरू हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः गरीबी उन्मूलन कार्य में प्रगति और कृषि उत्पादन में वृद्धि का चोली-दामन का साथ रहा है। यह भी देखा गया है कि जब प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन घटने लगता है तब ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत बढ़ने लगता है। गरीबी उन्मूलन के बारे में संवृद्धि से कोई उल्लेखनीय लाभ नहीं हुआ। इसलिए गरीबी उन्मूलन के लिए प्रत्यक्ष रूप से जोरदार उपाय किये गये हैं जिनके कारण ही विशेष प्रगति हुई।

पिछले वर्षों में विकास के अनुभवों से यह स्पष्ट होता है कि संवृद्धि से जितना लाभ होता है उतनी ही मात्रा में परिसम्पत्तियों में वृद्धि होती जाती है। कुछ देशों में यह देखा गया है जब संवृद्धि प्रक्रिया के आरंभ में परिसम्पत्तियों के अधिक समय वितरण का सामान्यतः परिणाम यह होता है कि नवीन आय का अपेक्षाकृत अच्छा वितरण होता है। चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि मुख्य परिसम्पति होती है। अतः इस संदर्भ में भूमि सुधारों के कार्यान्वयन का विशेष महत्व है। कुछ राज्यों में काश्तकार को मल्कियत के अधिकार नहीं दिये हैं। देश के अधिकांश भागों में काश्तकार और बंटाईदार असुरक्षित हैं। कृषि उत्पादन में वृद्धि और ग्रामीण क्षेत्रों में आमदनी के कार्य-कलाप शुरू करने के लिए परिसम्पत्ति मुहैया करने की कार्यनीति की सफलता भूमि और काश्तकारी के नियमों में प्रभावी रीति से सुधार किये जाने पर निर्भर है। गरीबों के लिए सीमान्तिक व उपसीमान्तिक मात्रा में भूमि का विशेष महत्व है। भूमि पर न आधारित रहने वाले कार्य-कलापों के लिए भी कुछ न कुछ भूमि का होना जरूरी होता है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह कहा गया है कि भूमि सुधार कार्यक्रम गरीबी उन्मूलन की कार्यनीति का अभिन्न अंग होना चाहिए। भूमि के पुनः वितरण संबंधी सुधार और काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करने के कार्यक्रमों को तेजी से लागू करना होगा। जैसा अनुभवों से स्पष्ट हुआ है, इस प्रक्रिया में पंचायती राज संस्थाओं का सहयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण रहेगा। जिन लोगों को फालतू भूमि दी जाय उन्हें सहायता देने वाले कार्यक्रमों को समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आदि कार्यक्रमों से मिला देना चाहिए। इस प्रसंग में विशेषकर भूमि सुधार, कृषि ऋण देने, अनाज प्राप्त करने, सामाजिक वनपालन जैसे विभिन्न प्रयोजनों के लिए अद्यतन भूमि और फसल संबंधी अभिलेख रखने के प्रसंग में राजस्व विभाग को विकास कार्यमूलक भूमिका को स्वीकार किया जाना चाहिए जो योजनाएं तैयार करने के लिए भी आवश्यक है।

ग्रामीण विकास में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के महत्व की ठीक परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया जाना चाहिए। गरीबी उन्मूलन के लिए किये जाने वाले उपायों को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के साथ सहयोजित कर देना चाहिए। जो चाहे समेकित ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के तहत मजदूरी से आय की व्यवस्था के माध्यम से या सूखे के तहत सूखे से बचाव के रूप में ही क्यों न किये जा रहे हों। इसका कारण यह है कि ये दोनों ही कार्यक्रम एक दूसरे के पोषक हैं। सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस पक्ष पर और ग्रामीण विकास के लाभ और क्षेत्र विकास प्रधान गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों और मानव संसाधन और क्षेत्र विकास के

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के बीच एकसूत्रता रखने पर जोर दिया गया है।

निश्चय ही यह बहुत ही आवश्यक है इस प्रकार की समेकन और संपर्क सूत्रता की प्रक्रिया को मूर्त रूप दिया जाये। समेकित क्षेत्र के आधार पर आधारभूत विकास व्रत ही जरूरी है। उदाहरण के लिए कृषि और डेयरी विकास की स्कीमों को कार्य सामग्री और ऋण मुहैया करने, संचार, सड़कें बाजार, ग्रामीण विद्युतीकरण आदि के साथ जोड़ देना होगा। पशुधन विकास की स्कीमों का पशुओं स्वास्थ्य और चरागाह व चारे की विकास स्कीमों से जोड़ देना होगा। सिंचाई की स्कीमों में सिंचित क्षेत्र और सिंचाई क्षेत्र के विकास की स्कीमें शामिल होंगी। जलसंभर क्षेत्र विकास की स्कीमों में मृदा और जल संरक्षण, भूगत जल उपयोग, शुष्क कृषि टेक्नोलाजी, चरागाह व चारा विकास तथा वनरोपण की स्कीमें शामिल होंगी। यह सभी जानते हैं कि परिवार कल्याण के कार्यक्रमों में और छोटे परिवार के लाभ को पूरा करने में लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा, पोषाहार, ग्रामीण स्वास्थ्य और सफाई और ग्रामीण जलपूर्ति का विशेष महत्व है। सामाजिक वनपालन और फार्मों के रूप में वनपालन द्वारा वनों के विकास कार्यक्रमों में गांवों में घरेलू कामकाज में ईंधन और विशाल पशुधन की आवश्यकता को पूरा करने में ईंधन की लकड़ी और चारे के बारे में बल दिया जाना आवश्यक है। हमारे कार्यक्रम की सफलता और विभिन्न स्रोतों से प्राप्त धन का समुचित उपयोग तभी सुनिश्चित हो सकता है जब जिला स्तर पर समेकित क्षेत्र योजना की जाये। बहुक्षेत्र क्षेत्रकीय कार्यक्रमों के स्थान पर बहु-क्षेत्रक क्षेत्रीय कार्यक्रम और परियोजनाओं के बनाये जाने पर बल देने के कारण इस प्रक्रिया के जिस तकनीकी विशेषज्ञ की अपेक्षा है वह जिला स्तर के नीचे नहीं बल्कि जिला स्तर पर ही उपलब्ध हो सकती है। विभिन्न एजेंसियों के बीच नीचे से ऊपर तक समन्वय जिला स्तर पर प्रगतिशील नेतृत्व द्वारा एक ही निकाय के अधीन संभव है।

अनेक ऐसी छोटी-छोटी स्कीमें हैं, जो गरीबों के लिए महत्वपूर्ण तथा कृषि विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं लेकिन इन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरणार्थ, लघु सिंचाई स्कीमें, मृदा और जल संरक्षण स्कीमें जिसमें बांध बनाने व जल का समुचित करने वाली स्कीमें भी आती हैं, सामुदायिक सिंचाई के कुओं की स्कीमें आदि। इसी प्रकार कुछ ऐसे कार्य भी महत्वपूर्ण हैं जहां अनुरक्षण कार्यों और विकास कार्यों के बीच बहुत अधिक भिन्नता नहीं रहती जैसे स्कूलों के लिए उपकरण और औषधालयों के लिए दवाइयां मुहैया करना आदि। इसके अलावा कुछ ऐसे कार्य भी हैं जिनकी अक्सर उपेक्षा की गई है, जैसे सड़कों, इमारतों, जलपूर्ति की स्कीमों और हैंड-पंपों आदि का अनुरक्षण। यदि इनको जिला स्तर पर सौंप दिया जाये तब अपेक्षाकृत अधिक ध्यान देना, सुनियोजित योजना बनाना, अधिक प्रभावी और सौद्देश्य प्रबंध करना संभव हो सकेगा। हालांकि जिला स्तर पर जब जिला बजट बनता है तब योजना और योजनागत जैसा कोई भेद नहीं रह जाता है तब भी इस बात का ख्याल रखा जाना चाहिए कि अनुरक्षण कार्यों के लिए आबंटित धन राशि किसी और कार्य पर नहीं खर्च की जाये अन्यथा बाद में अनुचित और अपर्याप्त अनुरक्षण होने से सौदा काफी महंगा पड़ सकता है।

समेकित योजना, प्रभावी कार्यान्वयन, सुप्रबंध, निकटतम देख-रेख और साथ-साथ मूल्यांकन कार्य सम्पन्न करने के लिए संगठनात्मक ढांचे की स्थापना की जानी आवश्यक है जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि संसाधनों का अभीष्ट उपयोग हो रहा है तथा लाभ उन्हीं को मिल रहा है जिसके लिए लाभ दिया जाना अभीष्ट था। इस कार्य में राष्ट्रीय उद्देश्य, राज्य की प्राथमिकताओं, क्षेत्रीय आवश्यकताओं, स्थानीय जरूरतों और जनता की आकांक्षाओं को ध्यान में रखना चाहिए। जिला स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्था का इस प्रकार दुहरा दायित्व अर्थात समकित क्षेत्र योजना बनाना और उसका कार्यान्वयन करना होगा।

राज्य सरकारें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के प्रति प्रायः उदासीन रही हैं। अधिकांश राज्यों में पंचायतें शक्ति व अधिकार तथा संसाधनों के अभाव में अस्तित्वहीन होती जा रही हैं। आज का युग विकास का युग है। इसलिए अब आवश्यकता इस बात की है कि योजनाएं तैयार करने, निर्णय लेने व उसे कार्यान्वित करने के काम को लोकतांत्रिक संस्थाओं के द्वारा जनता के अधिक से अधिक निकट लाया जाये। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि राज्य की शक्ति को जिला स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं को सौंपना बहुत जरूरी है। मौजूदा पद्धति में जो दोष हैं उन्हें दूर किया जाना चाहिए और ग्रामीण विकास तथा गरीबी उन्मूलन के विशाल

कार्य में जनसहयोग की भावना जागृत की जानी चाहिए। ग्रामीण विकास की प्रशासनिक व्यवस्था का दृष्टिकोण और उसकी समस्त प्रक्रिया और कार्य गरीब जनता के लिए होने चाहिए। जिला और उससे नीचे के स्तर पर विकास की समेकित प्रशासन व्यवस्था की जानी चाहिए। इन कार्यों के लिए तेजी से कार्रवाई करना समय के अनुकूल ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है।

समिति का यह मत है कि जिला स्तर पर विशेष रूप से विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में जिला स्तर पर जिला परिषद जैसी संस्थाएं होनी चाहिए। इन संस्थाओं में प्रति 30,000 से 40,000 तक की जनसंख्या के लिए चुना गया व्यक्ति सदस्य होना चाहिए। जिला सहकारी बैंक, शहरी स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त विधान सभाओं और संसद के सदस्य भी इन संस्थाओं से सहयोजित किये जा सकते हैं। इन संस्थाओं में आर्थिक/ व्यवसायिक/ सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं तथा निर्धन वर्ग की संस्थाओं के पर्याप्त प्रतिनिधि होने चाहिए। समिति ने यह बात नोट की है कि कर्नाटक विधान सभा ने महिलाओं के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया है। जिला परिषद का कार्यालय तीन से पांच वर्ष होना चाहिए। कार्यकाल समाप्त होने पर चुनाव अवश्य होने चाहिए। इन संस्थाओं की कार्य अवधि सामान्यतः नहीं बढ़ाई जानी चाहिए और यदि विशेष परिस्थिति में यह आवश्यक हो जाय तो छह महीने से अधिक नहीं बढ़ाई जानी चाहिए और इसी अवधि में चुनाव करा लेने चाहिए।

जहां तक जिला परिषद के अध्यक्ष के पद का प्रश्न है, राज्य सरकारें इन दो पद्धतियों में से कोई एक पद्धति चुन सकती है। इस पद के लिए जिला परिषद के सदस्यों में से चुनाव किया जा सकता है। तथापि अधिक से अधिक सहयोग की भावना जागृत करने और अधिकार के लिए संघर्ष की संभावना से बचने के लिए राज्य सरकारों द्वारा विकल्प के रूप में महापौर प्रणाली अपनाई जा सकती है। इन दोनों ही स्थितियों में अध्यक्ष, और यदि आवश्यक हो तो उपाध्यक्ष के लिए, चुनाव अन्तरणीय एक मत प्रणाली से किया जा सकता है। । अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा जिला परिषद के सदस्यों को भी पुनश्चया पाठ्यक्रम राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद द्वारा आयोजित किया जाना चाहिए।

जिला स्तर पर सभी विकास और उनके छोटे मोटे सभी कार्यालय स्पष्ट रूप से जिला परिषद के अधीन होने चाहिए। इन विभागों के योजनागत व योजना स्तर बजट और जिला स्तर और उससे नीचे के स्तर पर कार्यान्वित की जाने वाली विभिन्न विशेष स्कीमों के लिए आबंटित धनराशि जिला बजट का अंग होनी चाहिए। निश्चय ही कार्यान्वयन में विभिन्न विशिष्ट कार्यक्रमों के मानकों और मार्गदर्शी सिद्धान्तों का अनुपालन किया जाना चाहिए और इनके लिए नियत धनराशि किसी अन्य कार्य पर खर्च नहीं की जानी चाहिए। योजनाएं बनाते समय इन सबकी जांच की जानी चाहिए और विभिन्न क्षेत्रीय व क्षेत्र विकास कार्यक्रमों को एक में समन्वित कर प्रत्येक क्षेत्र विकास के लिए समेकित रूप-रेखा की जानी चाहिए। जो विभाग जिला परिषदों के अधीन किये जा सकते हैं उनकी सूची उदाहरणार्थ नीचे दी जा रही है:—

1. कृषि, जिसमें मृदासंरक्षण, बागवानी शामिल है।
2. पशुपालन ओर पशुचिकित्सा सेवाएं, मत्स्य पालन।
3. सहकारिता।
4. लघु सिंचाई और भू-गत जल विकास।
5. प्राथमिक और प्रौढ़ शिक्षा।
6. लोक स्वास्थ्य और परिवार कल्याण जिसमें प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र शामिल हैं।
7. ग्रामीण जल आपूर्ति और सफाई।
8. जिला सड़कें तथा जिले की विभागीय इमारतें (लोक निर्माण विभाग से)।
9. लघु और ग्रामोद्योग (जिला उद्योग केन्द्र)।
10. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का कल्याण।
11. समाज व महिला कल्याण जिसमें शिशु कल्याण भी शामिल है।
12. सामाजिक वनपालन (वन विभाग से)।

इन विभागों के अधिकारी वे सभी कार्य करते रहेंगे जो उन्हें कानूनी तौर से सौंपे गये हैं। तथापि जिला परिषदों और सिंचाई क्षेत्र विकास प्राधिकरण जैसे आय कानूनी प्राधिकरणों के बीच जो उसी क्षेत्र में काम कर रहे होंगे, कार्य विभाजन के

बारे में राज्य सरकारों को समुचित कार्रवाई करनी होगी।

कार्य संचालन के लिए जिला परिषदों में कई समितियां हो सकती हैं। ये समितियां सहित होनी चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि जिला परिषद के सभी सदस्य किसी न किसी समिति में अवश्य हों, समिति के सदस्यों का चुनाव जिला परिषद के सदस्यों द्वारा अन्तरणीय एक मत प्रणाली के आधार पर किया जाना चाहिए। समिति जिला परिषद में उदाहरण के रूप में निम्नलिखित समितियों के गठन का सुझाव देती है:—

1. स्थापना और विविध कार्यों के लिए सामान्य स्थायी समिति,

2. वित्त व्यवस्था, बजट निर्माण राजस्व में वृद्धि के लिए उपाय। वित्त व्यवस्था से संबंधित प्रस्ताव, आय और व्यय की जांच व आन्तरिक लेखा परीक्षा संबंधी कार्यों के लिए वित्त और लेखा परीक्षा समिति।

3. समेकित योजना कार्यों के लिए योजना समिति जिसमें सहकारिता और अन्य ऋण योजना के साथ-साथ सूखा-प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम। मरुस्थल विकास कार्यक्रम (जहां ये हों) सांख्यिकी कार्यक्रमों और स्कीमों का मूल्यांकन संबंधी कार्य शामिल हैं।

4. समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम आदि कार्यक्रमों के अलावा सूखे में सहायता के लिए रोजगार दिलाने वाले कार्यक्रमों के लिए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम समिति।

5. लघु सिंचाई, जिला और ग्रामीण सड़कों, इमारतों, ग्रामीण गृह निर्माण, ग्रामीण विस्तार सेवा, ग्रामीण जल आपूर्ति भूमिगत जल विकास, ग्रामीण विद्युतीकरण आदि के लिए लोक निर्माण और सुविधा समिति।

6. कृषि (जिसमें बीजों के फार्म, बीजों और उर्वरकों की आपूर्ति, फसल संरक्षण कार्य शामिल हैं) मृदा और जल-संरक्षण कृषि विस्तार सेवा, शुष्क भूमि विकास, सिंचाई क्षेत्र विकास, बागवानी, पशुधन विकास, पशुस्वास्थ्य, पशु चिकित्सा सेवाएं, चरागाह और चारा विकास, मत्स्य पालन, सहकारी समितियों आदि के लिए भूमि और पशुपालन समिति।

7. शैक्षणिक समस्याओं को छोड़कर प्राथमिक और प्रौढ़ शिक्षा के लिए समिति।

8. औषधालयों और चिकित्सालयों के लिए स्वास्थ्य समिति। इसके अधीन जिला स्तर के नीचे के स्तर पर स्थित प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र, पोषाहार, ग्रामीण स्वास्थ्य और सफाई, ग्रामीण जल आपूर्ति और परिवार कल्याण स्कीमें भी होंगी।

9. लघु उद्योग, ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योग विकास, प्रशिक्षण, काम आने वाली सामग्री की आपूर्ति और विपणन के लिए उद्योग समिति।

10. फार्म के रूप में वनपालन, सामाजिक वनपालन और ग्रामीण घरेलू ईंधन ऊर्जा के नये न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए सामाजिक वनपालन समिति।

11. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के कल्याण के लिए संस्थाओं और कार्यक्रमों सामाजिक और महिला कल्याण और समाज के अन्य निर्बल वर्गों के कल्याण की स्कीमों के लिए सामाजिक न्याय समिति।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रम सहित आधारभूत विकास कार्यों से संबद्ध विभाग व न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम जो ग्रामीण विकास के लिए अत्यावश्यक है, स्पष्ट रूप से सीधे जिला परिषद के अधीन आते हैं जिसमें कार्य के सुचारू संचालन के लिए गैर सरकारी सदस्य होते हैं। योजना बनाने और निर्णय लेने का काम पूरी तरह से विकेन्द्रीकृत कर दिया जायेगा। योजना कार्यों के लिए तकनीकी सलाह विभिन्न विकास विभागों द्वारा दी जायगी और ये विभाग संबंधित समितियों के अधीन काम करेंगे। उपर्युक्त आधार पर विकास कार्यों के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को अपनाने पर हम कह सकते हैं कि हमारा देश जिला प्रशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर अग्रसर हो रहा है।

नीचे से योजनायें तैयार करने और जनता तथा क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए यह भी आवश्यक होगा कि क्षेत्रों के लिए जो धनराशि आबंटित करने से रह जाती है उसका कुछ अंश प्रत्येक जिला परिषद को दे दिया जाय। राज्य सरकारों द्वारा दी जाने वाली इस धनराशि की मात्रा को निर्धारित करने काम वित्त आयोग को सौंपा जाना चाहिए जो प्रत्येक सरकार हर पांच वर्ष बाद नियुक्त किया करती है।

यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जिला परिषदों द्वारा निर्मित जिला योजनाओं में जिले की जो आवश्यकताएं प्रस्तुत की जायें वह उपलब्ध संसाधनों की तुलना में बहुत अधिक हो सकती है। यह भी संभव है कि जिला स्तर पर जो प्राथमिकताएं निश्चित की जायें उन सब के लिए जितनी धनराशि की आवश्यकता हो वह उस धनराशि से कहीं अधिक हो जितनी कि राज्य योजना में समस्त प्राथमिकताओं के संदर्भ में संबंधित जिले के लिए आबंटित की गई हो। इन परिस्थितियों में संतुलन बनाये रखना भी आवश्यक होगा। समिति का सुझाव है कि इस प्रयोजन के लिए मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में राज्य विकास परिषद गठित की जानी चाहिए। राज्य सरकार के सभी मंत्री व जिला परिषदों के अध्यक्ष इस समिति के सदस्य होने चाहिए। विकास आयुक्त इस समिति का सचिव हो। आवश्यकतानुसार राज्य विकास परिषद की बैठकें होनी चाहिए। राज्य की समस्त जिला योजनाओं को और अन्य क्षेत्रीय योजनाओं को एक में मिला कर राज्य की बनाई गई वार्षिक योजना का अनुमोदन करने के अलावा इनका कार्य जिला योजनाओं का अनुमोदन करना भी होना चाहिए।

जिला स्तर के नीचे के स्तर की व्यवस्था के लिए दो भिन्न-भिन्न मंडल उपलब्ध हैं जिन पर राज्य सरकारें विचार कर सकती हैं। चूंकि विकास खंड को विकास प्रशासन की एक इकाई के रूप में स्वीकार कर लिया गया है अतः जिला योजनाओं के निर्माण की तैयारी अन्ततः विकास खंड के स्तर से शुरू की जा सकती है। समिति के विकास खंड के स्तर पर समेकित विकास की पुरानी अवधारणा को पुनः शुरू करने की सिफारिश की है जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम के लिए शुरू की गई थी और जिसका उद्देश्य मौजूदा स्तर की अपेक्षा नीचे स्तर पर प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करना है। समिति यह भी सिफारिश करती है कि प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर गठित पंचायत समिति जैसी संस्था भी होनी चाहिए जो जिला परिषद के मार्ग निदेशन में विकास-स्कीमों की योजना बनाने और उनका कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी हो। इस संस्था में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति महिलाओं आदि के प्रतिनिधियों के लिए स्थान आरक्षित होने चाहिए। इस स्तर पर इस संस्था में विपणन सहकारी समितियों और भूमि विकास बैंकों के प्रतिनिधि भी होने चाहिए जो विकास खंड स्तर पर काम करते हैं। विकास खंड के स्तर पर जो लाइन डिपार्टमेंट में काम करते हैं उन्हें पंचायत समिति के अधीन होना चाहिए। पंचायत समितियां विकास खंडों के लिए योजनाएं तैयार करवायेंगी और जिला परिषद का अनुमोदन प्राप्त करेंगी। स्कीमों का कार्यान्वयन में पंचायत समितियों का कार्यकारी उत्तरदायित्व भी होगा और समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि के तहत लाभ प्राप्त करने वालों का अंतिम रूप से चुनाव करेंगी। इसके नीचे मौजूदा ग्राम पंचायतें पूर्ववत बनी रहेंगी जो प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर गठित होती हैं।

दूसरा विकल्प मंडल पंचायतों का गठन है। यह मौजूदा ग्राम पंचायत के स्थान पर कुल 15,000 से 20,000 तक की जनसंख्या के प्रत्येक ग्राम समूह के लिए गठित की जायेगी। इसके सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष आधार पर किया जाएगा तथा इसमें अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति और महिला प्रतिनिधियों के लिए स्थान आरक्षित होंगे। यह कार्यकारी संस्था हो सकती है जिसका काम अपने स्तर पर उन स्कीमों का कार्यान्वयन करना होगा जो इसे सौंपी जायेगी। इन संस्थाओं को भी उन व्यक्तियों आदि का चुनाव करने के काम से संबद्ध किया जा सकता है जो गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और रोजगार कार्यक्रमों के तहत सहायता प्राप्त करने के पात्र हैं। इस व्यवस्था में राज्य सरकारें ब्लाक स्तर पर सलाहकारी व समन्वयकारी संस्था के रूप में एक पंचायत समिति गठित कर सकती है। यह समिति मंडल पंचायतों, जिला परिषदों, सहकारी संस्थाओं आदि से प्रतिनिधियों का चुनाव कर गठित की जानी चाहिए। इसका काम भी विकास खंडों के लिए योजनाएं तैयार करवाना होगा।

प्रत्येक गांव के लिए एक ग्राम सभा होगी। इसकी बैठकें आवश्यकतानुसार होंगी लेकिन छह महीने में एक बार जरूरी होगी। इन बैठकों की अध्यक्षता ग्राम पंचायत या मंडल पंचायत का अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष द्वारा की जानी चाहिए। समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम जैसे गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के तहत सहायता के पात्र व्यक्तियों आदि का चुनाव ग्राम सभा की बैठकों में किया जाना चाहिए। पंचायत द्वारा ग्राम सभा के सम्मुख विचारार्थ उन विकास कार्यक्रमों के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत की जायेगी जो पिछले वर्ष गांव के कल्याण के लिए शुरू किये गये थे और चालू वर्ष के लिए शुरू किए जाने

वाले कार्यक्रमों के बारे में प्रस्ताव प्रस्तुत किये जायेंगे। ग्राम सभा नये कार्यक्रमों के बारे में अपने प्रस्ताव दे सकती है और गांव में विभिन्न कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता भी दे सकती है। ग्राम सभा की सिफारिशों पर ग्राम/मंडल पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद द्वारा समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

पंचायत समिति और ग्राम/मंडल पंचायत की एक उपसमिति होनी चाहिए जिसमें मुख्यत: महिलाएं सदस्य होनी चाहिए। इस उपसमिति का काम प्रौढ़ शिक्षा के साथ-साथ महिलाओं और बच्चों के कल्याण के लिए कार्यक्रमों और स्कीमों पर विचार करना और उनको कार्यान्वित करना होगा।

बहुत से गांवों व शहरों में ऐसे मानवीय संसाधन हैं जिनकी ओर अभी किसी का ध्यान नहीं गया है। तकनीकी ज्ञान व अन्य प्रकार के कौशल से सभ्य व ऐसे व्यक्ति हैं जो सेवा निवृत्त हैं और जो अपनी सेवाएं देने के लिए तत्पर रहते हैं। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति भी हैं जो समाज सेवा के क्षेत्र में सक्रिय हैं। इन व्यक्तियों, स्वयंसेवी संस्थाओं और निर्धन व्यक्तियों के संगठन के प्रतिनिधियों को पंचायती राज की संस्थाओं के विभिन्न समितियों में सहयोजित किया जाना चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं और निर्धन व्यक्तियों के संगठनों का भी व्यापक रूप से विकास कार्यक्रमों में सहयोग लिया जाना चाहिए। □

---

*यह अंश ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की विद्यमान प्रशासकीय व्यवस्थाओं की समीक्षा समिति की रिपोर्ट-दिसम्बर 1985 – ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मंत्रालय से लिया गया है।

प्रजातन्त्र और विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं का पुनर्जीवीकरण

पंचायतों की संकल्पना 'पूर्ण स्वराज' और 'ग्राम स्वराज' के दर्शन का ही एक अंग था। महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के दौर में उन संकल्पनाओं में एक अडिग तथा सच्ची देशभक्ति की प्रेरणा की बात सोचते थे। वास्तव में संविधान के बीजारोपण के समय, ग्राम पंचायतों की संकल्पना कोई बाहर की तथा प्राचीन ऐतिहासिक संकल्पना नहीं थी। यह तो स्वतन्त्रता के लिए भारत के संग्राम की विरासत का और इसकी अपनी परम्पराओं तथा अस्मिता की खोज का एक अंग था।

भारत का संविधान, प्रजातान्त्रिक स्वशासन और विधिनियम के एक सुव्यवस्थित दस्तावेज के रूप में भारत की जनता के नाम से बनाया, अपनाया तथा घोषित किया गया था। इसमें, 'स्वराज' के दर्शन में निष्ठा रखने वाली पुनर्जाग्रत भारतीय जनता की प्रजातांत्रिक आस्था और संकल्प को, न केवल विदेशी साम्राज्यवादी सत्ता की उपनिवेशी दासता से मुक्ति दिलाने के अर्थ में बल्कि एक जीवनचर्या तथा सामाजिक आचरण के रूप में स्वशासन और व्यक्ति के बुनियादी अधिकारों तथा सम्मान की रक्षा के अर्थ में बनाए रखा गया है। हमारे संविधान का ढांचा प्रजातंत्र और नियमों के ताने-बाने में बुना गया है।

भारत के संविधान में द्विसदनीय संसद के रूप में और मंत्रिपरिषद को संयुक्त रूप में लोक सभा के प्रति उत्तरदायी बनाकर राष्ट्रीय स्तर पर गणतांत्रिक प्रजातन्त्र की व्यवस्था की गई है। संसदीय संस्थाओं का वही मूल सिद्धान्त राज्यों के स्तर पर भी दोहराया गया है जोकि भारत संघ के अंग हैं। लेकिन भारत के संसदीय प्रजातन्त्र के अर्ध-संघीय ढांचे में पंचायती राज संस्थाओं और उनके गठन को संविधान के अनुच्छेद 40 में निम्नलिखित रूप में अंकित, एक सामान्य निर्देश पर छोड़ दिया गया है :—

संरकार ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठाएगी और उन्हें जो भी आवश्यक हो, ऐसी शक्तियां और प्राधिकार देगी जिससे वे स्वशासन की इकाइयों के रूप में काम कर सकें।"

अनुच्छेद 40 पर विचार-विमर्श हुआ और कुछ देर से 22 नवम्बर, 1948 को इसे भारत के संविधान के प्रारूप में अनुच्छेद 31 (क) के रूप में शामिल किया गया। अब इसे भारत के संविधान के अध्याय 4 में अनुच्छेद 40 के रूप में पुनः क्रम दिया गया है। यहां इस बात की याद दिलाना महत्वपूर्ण है कि एक समय, संविधान के प्रारूप में से ग्राम पंचायतों का निकाल देने को इस आधार पर उचित ठहराने की कोशिश की गई थी कि भारत में जो ग्राम समुदाय बहुत से उतार-चढ़ावों में बरकार रहे हैं, वे स्वशासन की इकाई बनने के योग्य नहीं हैं। उस मुद्दे पर संविधान सभा के सदस्यों के बीच काफी रोष और उत्तेजना थी। तब अन्दरुनी तौर पर एक बीच का रास्ता निकाला गया। परिणामस्वरूप श्री के सन्थानम के संशोधन को कुछ हद तक संयम तथा शान्ति के साथ स्वीकार कर लिया गया, जो बाद में संविधान का अनुच्छेद 40 बना। कोई विवादास्पद भाषण नहीं दिए गए। इस प्रावधान के लिए संविधान सभा में हुई बहस आठ पृष्ठों से भी कम में अंकित है और मतभेद को पूर्ण रूप से प्रकट नहीं करती जिसमें से सहमति को प्राप्त किया गया था। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने कुछ गंभीरमना होकर कहा थी कि संविधान सभा को संविधान के आधार के रूप में ग्राम पंचायतों को अपनाने का प्रयास करना चाहिए था। संवैधानिक सलाहकार श्री बेनेगल नरसिंह राव ने इस विचार के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा था कि संविधान के आधार में परिवर्तन के लिए काफी समय निकल चुका है जिसको अंतिम रूप देने का काम अब काफी आगे बढ़ चुका है। जैसा कि श्री टी प्रकाशम ने संविधान सभा की चर्चा के दौरान कहा कि श्री के सन्थानम का संशोधन चाहे देर से मिला हो, परन्तु यह महात्मा गांधी के बुनियादी प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्तों को उभारने का स्वागत योग्य प्रयास है। संविधान सभा में स्वशासन के बारे में गांधीवादी विचारों और भारत का प्राचीन प्रजातान्त्रिक तथा गणतान्त्रिक परम्पराओं के बारे में जोरदार भाषणों की अनुगूंज सुनाई दी थी।

स्पष्ट है, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त के रूप में अनुच्छेद 40 को जोड़ना एक संकल्पनात्मक दृष्टिकोण को

जगह देने मात्र से अधिक कुछ नहीं था। इसने संविधान के अभिन्न तथा परिचालक भाग के रूप में एक आदेशात्मक और संवैधानिक स्वरूप की दृष्टि से इसे एक कानून का रूप नहीं दिया। तथापि, अनुच्छेद 40 स्वशासन के एककों के रूप में ग्राम पंचायतों की संकल्पना के संविधानिक आदेश का बीज विद्यमान है और सुस्पष्ट रूपरेखा को प्रस्तुत करता है और अपेक्षा करता है कि उन्हें सभी आवश्यक शक्तियां तथा प्राधिकार दिये जाने चाहिएं ताकि वे स्वशासन के एककों के रूप में काम कर सकें।

अनुच्छेद 40 की वास्तविक सम्भाव्यता केवल संवैधानिक तौर पर बनाए गए सरकारी नीति के सिद्धान्त के एक अंग के रूप में सभी स्तरों पर ग्राम पंचायतों को गठित करने के लिए भारत सरकार को इसके निर्देश में ही निहित नहीं है, बल्कि इसके इस महत्वपूर्ण सहवर्ती आदेश में निहित है कि पंचायतों को "ऐसी शक्तियां और अधिकार जो उन्हें पंचायत स्वशासन के एककों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हों", दिए जाने चाहिए। उस आदेश का आशय निहायत साफ और बेबाक है। इसका अर्थ यह है कि संविधान के जन्मदाताओं का कार्य और मनोरथ तब तक अधूरा रहेगा, जब तक ग्राम पंचायतें, हमारी प्रजातांत्रिक नीति के एक अंग के रूप में स्वशासन के एककों के रूप में काम करना आरम्भ नहीं कर देतीं। पंचायत संस्थाओं के ढांचे पर विचार करने का प्रयास करना संवैधानिक आदेश के इस अधूरे काम को पूरा करने की प्रेरणा लेना है। उस संवैधानिक आदेश का उद्देश्यमूलक बल, हमारे प्रजातन्त्र और विकास के लिए, स्वतन्त्रता और कल्याण के लिए, और न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय एकता और भारतवासियों में भाई-चारे जैसी अनिवार्य तौर पर परस्पर जुड़ी हुई धारणाओं के लिए इसके विविध पहलुओं के साथ संरचनात्मक, परिचालनात्मक और कार्यात्मक है।

प्रजातन्त्र का समन्वित चित्रण

राष्ट्रीय संसद तथा केन्द्रीय सरकार, राज्य विधान सभाएं और राज्य सरकारें तथा हमारी न्यायिक प्रणाली के सभी स्तंभ प्रजातन्त्र को चलाने तथा कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अति आवश्यक हैं। उनके अपने अलग-अलग क्षेत्रों में वे सांविधिक, कार्यकारी और न्यायिक संस्थाएं एक महत्वपूर्ण ढांचा प्रदान करती हैं। लेकिन वे एक आम भारतीय ग्रामवासी के जीवन के अनिवार्य अंग नहीं बने हैं। संचार-प्रौद्योगिकी में हुई क्रान्ति कभी-कभी उसे इन संस्थाओं के आसपास ले आती है और दृश्य-श्रव्य रूप से उनकी झलक दिखा देती है लेकिन वह उनके साथ अपनी दैनिक आवश्यकताओं और रोजमर्रा की चिन्ताओं को जोड़ नहीं सकता। स्वशासन का अर्थ उसके लिए केवल किसी खास अवसर पर हो सकता है जब वह अपने मताधिकार का प्रयोग करे; लेकिन लोकसभा और विधान सभा के लिए चुनाव प्रक्रिया में उसकी भागीदारी उसे प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में एक पूर्ण और सार्थक भागीदारी नहीं दे सकती। वह उस महान शक्ति और उससे भी ज्यादा उस प्रजातांत्रिक गणराज्य अर्थात भारत का एक नागरिक होने के गुरुतर उत्तरदायित्व को अनुभव करने में असमर्थ है। भारतीय नागरिकों, विशेष रूप से गांवों के लोगों में प्रजातांत्रिक अनुभव में कई अंतराल तथा असंगतियां हैं। हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं और हमारे शहरी क्षेत्रों में नगर निकाय सबसे पहले और सबसे आवश्यक रूप में उन दूरियों और फासलों को पाटने के लिए एक सही, भरोसेमन्द और टिकाऊ संस्था का, आश्वासन देते हैं। स्वशासन के स्थानीय एककों के बिना हम एक सक्षम और सक्रिय प्रजातन्त्र की संस्थापना करने की आशा नहीं कर सकते। इसी परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण और शहरी विकास वास्तव में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और उस सामंती संस्कृति के अंग हैं जिसे हम प्रजातांत्रिक शहरीकरण कह सकते हैं, स्वशासन अनिवार्य तौर पर ग्रामीण और साथ-साथ शहरी जीवन के सभी पहलुओं के विकास में व्याप्त और सहायक होता है। इसी समग्र दृष्टिकोण से उनकी समीक्षा की जानी चाहिए, उनका पुनर्गठन, और नवीकरण करके उन्हें पुनर्जीवन प्रदान करना होगा।

ब्रिटिश साम्राज्य की अवधि के दौरान भारत के विभिन्न भागों में, विभिन्न जिलों में तथा शहरी क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन का अनुभव अनियमित था। यह सच है कि उस अवधि के दौरान शहरों और नगरों में नगर स्वशासन के कुछ बुनियादी नियम बनाए गए थे। कुछ नगर निकायों ने इस प्रकार की साख जमा ली कि वे नागरिक स्वशासन की सर्वोत्तमता के उदाहरण बन गए। तथापि, ऐसी अन्य कई नगरपालिकाएं थीं जो स्थानीय स्वशासन के सिद्धान्त को पूरा समझने में असमर्थ साबित हुईं। जिला परिषदें प्राथमिक तौर पर प्रशासनिक तन्त्र थीं और वे अपने आप में उभर कर नहीं आ सकीं। एक स्पष्ट कारण यह था कि देश में

उपनिवेशी प्रशासन और इसके पूर्व निरर्थक आदेशों का दबाव था। गांवों में पंचायतें प्राय: जाति पर आधारित संस्थाओं के रूप में थीं जिनके कार्य मूल रूप से सामाजिक थे लेकिन उन्होंने सरकारी संस्थाओं और स्वशासन तथा सामाजिक परिवर्तन के तन्त्रों के रूप में कार्य नहीं किया था।

अनुच्छेद 40 में निहित, गांव स्तर पर प्रजातन्त्रवादी स्वशासन का संवैधानिक स्वरूप हमारे संविधान के आरम्भ होने के कुछ वर्षों के बाद उस समय सामने आने लगा जब यह बात बहुत जोर पकड़ने लगी कि प्रजातान्त्रिक सहयोग के बिना सामुदायिक विकास और सामाजिक आर्थिक परिवर्तन नहीं हो सकता। कार्यपालिका तन्त्र की सीमाओं, मजबूरियों तथा कमजोरियों के अहसास के कारण पंचायती राज संस्थाओं में एक सक्रिय रुचि बढ़ी जिसे उदार समर्थन द्वारा सजीव बना दिया गया था।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम 1952 में आरम्भ किया गया था। प्रशासन के एककों के रूप में विकास खण्ड स्थापित किये गए। उसके तत्काल बाद विभिन्न स्थानीय तथा कार्यकारी स्तरों पर संवृद्धि तथा विकास की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रशासनिक ढांचे को मज़बूत करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय विस्तार सेवा स्थापित की गई। सही कहा जाए, तो उस समय जनता के नामित प्रतिनिधियों के माध्यम से जनता की केवल मामूली-सी भागीदारी थी। जल्दी ही जनता द्वारा रुचि और भागीदारी की कमी से समुदाय विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वयन में रूकावट दिखाई देने लगी। उस अनुभव के आधार पर, दूसरे योजना के दस्तावेज ने प्रजातान्त्रिक संस्थाओं के विकास को तेज करने की आवश्यकता को मान्यता दी और कहा कि जब तक एक व्यापक ग्राम आयोजना नहीं होगी जो सम्पूर्ण समाज का ध्यान रख सके तब तक कास्तकार किसानों, भूमिहीन मजदूरों तथा कारीगरों जैसे कमजोर वर्गों की जरूरतों को सरकार द्वारा दी गई सहायता पूरी तरह लाभकारी नहीं हो सकती। राष्ट्रीय विस्तार आन्दोलन को गांव में प्रत्येक परिवार तक पहुंचाने के उद्देश्य का हवाला देते हुए, दूसरी पंचवर्षीय योजना में बताया गया है कि उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए गांव में एक एजेन्सी का होना जरूरी है जो पूरे गांव का प्रतिनिधित्व करे और उत्तरदायित्व को उठा सके तथा गांव के संसाधनों का विकास करने तथा आवश्यक नेतृत्व प्रदान करने के लिए पहल कर सके। वास्तव में ग्रामीण प्रगति, गांव में एक सक्रिय संगठन के होने पर निर्भर करती है जो कि प्रशासन की सहायता से चलाए जाने वाले सामूहिक कार्यक्रमों में ऊपर बताए गए कमजोर वर्गों सहित सभी लोगों को शामिल कर सके। दूसरी योजना के पीछे विचार यह था कि सहकारी समितियों के साथ ग्राम पंचायतें ग्रामीण क्षेत्रों में और अधिक न्याय तथा समन्वित सामाजिक ढांचे के निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना का मुख्य जोर सभी गांवों में सार्विधिक पंचायतें स्थापित करने का था, हालांकि स्वशासन के एककों के रूप में इतना नहीं था जितना कि राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास परियोजनाओं के तन्त्र के रूप में। इसका यही बुनियादी कारण था कि 1960-61 तक पंचायतों की संख्या दोगुने से भी अधिक करनी थी।

समिति का यह मत है कि पंचायती राज संस्थाओं को प्रशासनिक कार्यक्रमों तथा विकास परियोजनाओं के लिए सुलभ साधन मानना एक बुनियादी गलती थी। उसी गलती का नतीजा, थोड़ा या बहुत, यही हुआ कि स्वशासन की इकाई के रूप में इन संस्थाओं का अवमूल्यन और अधःपतन हुआ और उनको दूसरे दर्जे का स्थान दिया गया और इस प्रकार प्रजातन्त्र तथा विकास का मार्ग अवरुद्ध और दुर्गम हुआ।

पंचायती राज आन्दोलन का उत्थान-पतन

बलवन्तराय मेहता अध्ययन दल जनवरी, 1957 में 'मितव्ययता तथा कुशलता' की दृष्टि से सामुदायिक विकास परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा का अध्ययन करने और रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया गया था जिसे अन्य बातों के अलावा, यह आन्दोलन स्थानीय सूझ-बूझ का इस्तेमाल करने में और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में सुधार करने की प्रक्रिया की निरन्तरता बनाए रखने हेतु संस्थाओं को जन्म देने में कहां तक सफल हुआ है, इसका भी मूल्यांकन करना था। एक बार फिर दृष्टिकोण मूल्यत: मितव्ययता तथा कुशलता का ही रहा, लेकिन बलवन्तराय मेहता दल ने पाया कि "उत्तरदायित्व और शक्ति के बिना विकास आगे नहीं बढ़ सकता। समुदाय विकास तभी वास्तविक हो सकता है जब समुदाय अपनी समस्याओं को समझें, अपने उत्तरदायित्वों को महसूस करें, अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों की मार्फत आवश्यक शक्तियों का प्रयोग करें और स्थानीय प्रशासन पर सतत् तथा सजग सतर्कता रखे।" इसलिए इसी उद्देश्य से इस दल के सार्विधिक तौर पर निर्वाचित स्थानीय निकायों की यथाशीघ्र स्थापना और उन्हें आवश्यक संसाधनों, शक्तियों तथा प्राधिकार

दिये जाने की सिफारिश की थी।

बलवन्तराय मेहता अध्ययन दल की सिफारिशें एक प्राणवायु की तरह आयी और उन्होंने सामुदायिक विकास तथा विस्तार सेवा परियोजनाओं को एक नया जीवन प्रदान किया। इससे पंचायती राज संस्थाओं के नए युग का मार्ग प्रशस्त हुआ जिसका उद्घाटन नागौर में एक राष्ट्रीय रैली में 2 अक्तूबर 1959 को पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस नई शुरुआत को नए भारत के संदर्भ में एक महान क्रान्तिकारी और ऐतिहासिक कदम कहा। एक तरह से, यह गणतन्त्रवादी प्रजातन्त्र में विश्वास का एक कदम था और भारत की जनता के लिए और भारत की जनता द्वारा संसदीय प्रणाली की स्थापना के समान ही यह एक महत्वपूर्ण कार्य था। इस विचार ने जनता में उत्साह की नई लहर पैदा की जिसे नई दिशा तथा एक संस्थागत आश्रय मिला। नागौर में पंचायती राज संस्थाओं की उत्साह भरी शुरुआत जन-मन के भीतर तक घर कर गई। उस स्मरणीय रैली से बड़ी उम्मीदें तथा आशाएं बंधी। यह विचार न तो ख्याली पुलाव था और न विकास प्रशासन की एक सहायक प्रणाली बनाना मात्र था। वास्तव में हुआ यह कि उस महत्वपूर्ण परिवर्तन का आन्दोलन क्षीण होने लगा और जब स्वशासन के एककों के रूप में उनकी प्रतिष्ठा तथा भूमिका पर भ्रष्टाचार तथा अव्यवस्था के अनेक कारणों से ग्रहण लगने लगा तो पंचायती राज संस्थाओं की दशा बिगड़ने लगी थी। जब स्वशासन के एक एकक के रूप में पंचायती राज संस्थाओं का आधार ही डिग गया तो ये संस्थाएं विकास के वचन को निभाने की सामर्थ्य भी खो बैठीं।

बलवन्तराय मेहता अध्ययन दल से रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात्, मेघालय तथा नगालैण्ड राज्यों और लक्षद्वीप तथा मिजोरम केंद्र शासित क्षेत्रों को छोड़कर विभिन्न राज्यों में कानून बनाए गए थे। योजना आयोग द्वारा गठित की गई समिति, जिसने 1985 में रिपोर्ट दी थी, के अनुसार 12 राज्यों में तथा 1 केन्द्र शासित क्षेत्र में त्रिस्तरीय पद्धति अपनाई गई और 4 राज्यों तथा दो संघ शासित क्षेत्रों में द्विस्तरीय पद्धति मौजूद है। 14 राज्यों तथा 4 केन्द्र शासित क्षेत्रों में ग्राम पंचायत की एक स्तरीय पद्धति विद्यमान है। प्रत्येक राज्य में निर्वाचन पद्धति भी भिन्न-भिन्न है। राज्यों द्वारा अपनाई गई पंचायत संस्थाओं में संरचना, निर्वाचन पद्धतियों, शक्तियों और कार्यों के सम्बन्ध में काफी विविधता है। आज देश में 2,17,300 से भी अधिक ग्राम पंचायतें हैं, जिनके अन्तर्गत लगभग 5.79 लाख गांवों के 86% तथा हमारे देश की ग्रामीण जनसंख्या के 92% शामिल हैं। खण्ड, ताल्लुका अथवा तहसील स्तर पर विभिन्न नामों वाली लगभग 4526 पंचायत समितियां हैं। देश में लगभग 330 जिला परिषदें हैं जिनमें 76 प्रतिशत जिले शामिल हैं; प्रत्येक जिला परिषद में औसतन 13 से 14 पंचायत समितियां और लगभग 660 ग्राम पंचायतें हैं।

यद्यपि, प्रत्येक राज्य में भिन्नताएं हैं, फिर भी मोटे तौर पर यह बताया जा सकता है कि पंचायतों को सौंपे गए कार्यों में ग्रामीण सड़कों; सामुदायिक कुओं का निर्माण, सार्वजनिक पार्कों का रखरखाव, तालाब, सिंचाई कार्य, जन स्वास्थ्य, नालियों का निर्माण कार्य तथा अन्य नागरिक सेवाएं भी शामिल हैं। कुछ राज्यों में वे प्राथमिक शिक्षा के लिए भी जिम्मेदार हैं और उन्हें ग्रामीण उद्योगों, प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या, चिकित्सा राहत, महिलाओं और बच्चों का कल्याण, पशुओं के चरने के चरागाह तथा सामुदायिक भूमि और सम्पत्तियों के रखरखाव तथा कृषि उत्पादन के जरूरी साज-सामान के उपलब्ध कराने से संबंधित कार्य भी सौंपे गए हैं। विकास परियोजना की मूल आयोजना और कार्यान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं को शामिल करने की सीमा और गति के भी एक राज्य से दूसरे राज्य और यहां तक कि राज्य के भीतर ही काफी भिन्नता है। अधिकतर पंचायती राज संस्थाओं को संसाधनों की अपर्याप्तता का सामना करना पड़ता था जिसके लिए सामान्यतया भूमि राजस्व तथा जल की दर के निर्धारण, अथवा भूमि राजस्व और जल की दर के कर पर उपकर तथा राज्य-सरकारों से विभिन्न अनुदानों से प्राप्त होने वाले संसाधनों से धनराशि दी जाती थी। कुछ मामलों में चुंगी और धन-राजस्व से राजस्व प्राप्त होता है। कुछ पंचायती राज संस्थाएं भवनों पर कर तथा गैर-कृषि भूमि अथवा अचल सम्पति के स्थानांतरण पर स्टाम्प ड्यूटी पर अधिक कर लगाकर भी आय प्राप्त करती हैं। आमदनी के स्रोतों में भिन्नता है, किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में भारतीय लोगों के जीवन स्तर में इनका महत्व कम नहीं है। वहां व्यापार, उद्योग, जल आपूर्ति, स्वच्छता, लाईटिंग, मंडियों, बाजारों तथा हाटों, पर्यटन, मेलों तथा उत्सवों, प्रदर्शनियों, मनोरंजन शो, रेस्ट हाउस, बस स्टैण्ड, बैलगाडी-स्टैण्ड, ऊंट पार्किंग,

वाहन पार्किंग, पशुओं, पशुओं के तालाबों, मत्स्य तालाबों, कसाई घरों, नौकायन पुलों, चरागाहों तथा वाणिज्यिक फसलों पर स्थानीय कर, शुल्क, चुंगी, लाइसेंस फीस तथा इसी प्रकार के अन्य कर लगाए जाते हैं। जिन विषयों पर कर लगाए जा सकते हैं उनकी सूची लम्बी हो सकती है लेकिन उन से जो आय और उगाही होती है वह जरूर इन जिम्मेदारियों की तुलना में हमेशा कम रहती है जो पंचायती राज संस्थाओं को सौंपी गई या सौंपी जा सकती है और जिनका हमारे ग्रामीण जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

आज पंचायती राज संस्थाओं का सारे देश में फैलाव हो चुका है लेकिन उस अर्थ और रूप में नहीं जिसमें होना चाहिए था। हमारे देश के समग्र भागों में ऐसी हजारों संस्थाएं हैं। कानून बनाकर उन्हें शक्तियां और कार्य सौंपे गए हैं। तथापि, ऐसा महसूस हुआ है कि ये संस्थाएं अपने वचन और क्षमता के अनुसार कार्य करने में असमर्थ रही हैं। इन संस्थाओं के विरुद्ध एक न्याय संगत प्रश्न चिन्ह है। इसलिए नहीं कि सांविधानिक वचन का अनुपालन नहीं किया गया, न ही इसलिए कि स्वशासन पर अब हमारा विश्वास नहीं रहा और न ही इसलिए कि हमें स्वयं पर विश्वास नहीं रहा; किन्तु इसलिए कि हमने इन संस्थाओं की उपेक्षा होने दी है और हम उनके लिए आवश्यक साज-सामान व सामग्री तथा मानव संसाधनों की पूर्ति करके उनका पोषण करने में असमर्थ रहे हैं तथा इसलिए भी कि कार्यात्मक जरूरतें तथा राजनीतिक सत्ता की ललक के कारण स्व-शासन तथा सार्वजनिक सेवाओं की मूल संकल्पना पर भारी कुठाराघात हुआ है।

पतन के कारण

आरम्भ में, प्रजातंत्र तथा विकास साथ-साथ चलते प्रतीत होते थे। आशावाद तथा उत्साह का वातावरण बना हुआ था, किन्तु नए युग के आरम्भ होने के कुछ ही वर्षों के भीतर पंचायती राज संस्थाएं शिथिलता, गतिरुद्धता और पतन की ओर गिरने लगी थीं।

जनशक्ति के केन्द्र के रूप में पंचायती राज संस्थाओं की सम्भाव्यता के बारे में चारों ओर आशंकाएं और ईर्ष्यालु प्रतिरोध की भावना पैदा होने लगी थी। संसद और राज्य विधानमंडल के निर्वाचित सदस्यों को, पंचायती राज संस्थाओं के उन पदाधिकारियों पर अपनी अपरिहार्य निर्भरता को आशंकित होकर महसूस किया जिनके साथ वे अपनी सत्ता का बंटवारा करने के लिए कदापि इच्छुक नहीं थे। इन संस्थाओं के बारे में जनता की उदासीनता और निरुत्साह तथा साथ ही संस्थाओं को प्राथमिकता के आधार पर समर्थन देने की राजनीतिक इच्छा भी स्पष्ट रूप से कम थी। इन संस्थाओं को निरन्तर उपेक्षा और अपमानपूर्ण व्यवहार व साधनहीनता की स्थिति में बड़ी कठिनाई से कार्य करना पड़ता था। प्रारम्भिक चरण के पश्चात अधिकारी तंत्र दूर हटता जा रहा था तथा उन्होंने इन संस्थाओं की एक सुनिश्चित तरीके से उपेक्षा करनी शुरू कर दी थी। कई कार्यक्रम पंचायती राज संस्थाओं को उनमें शामिल किये बिना आरम्भ कर दिए गए थे। इन कार्यक्रमों को अधिकारी तंत्र ने अपनी मुट्ठी में रखा जिससे स्थानीय स्व-शासन के एकक के रूप में पंचायती राज संस्थाओं की जड़ें कमजोर हुईं और कार्य में कमी से उनका उद्देश्य विफल हुआ। प्रशिक्षण के लिए सुविधायें कम थीं। अनुसन्धान तथा सुधार के साधन नगण्य थे। राजनीतिक गुटबन्दी तथा इन संस्थाओं से लोगों की निराशा के कारण वे और भी कमजोर हो गईं और जन-शक्ति के अक्षय भंडार से ये संस्थायें अपने आपको पोषित करने में विफल रहीं क्योंकि एक बुनियादी संस्था के रूप में ग्राम सभा एक जीवन्त तथा सक्रिय संस्था नहीं बन सकी थी। धीरे-धीरे भ्रष्टाचार फैलना आरम्भ हो गया। इससे भी बुरा यह हुआ कि कई वर्षों तक पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन नहीं कराये गए। निर्वाचित सरपंचों, पंचों, तथा अन्य पंचायती राज कार्यकर्त्ताओं को निलम्बित कर दिया गया और पंचायती राज का अक्सर अन्धाधुंध तरीके से अतिक्रमण किया गया।

यह है कारणों का मोटा लेखा-जोखा। ये तो थे ही और वे अन्य छोटी-मोटी बीमारियों तथा अवरोधों के मात्र प्रतीक ही नहीं थे। ये रोग जिनसे पंचायती राज संस्थायें लगभग 25 वर्षों से ग्रस्त हैं, वास्तव में हमारे राजनीतिक तन्त्र की ही देन हैं। पंचायती राज संस्थाओं को शुरु से ही अपने अस्तित्व के लिए जमी हुई शक्ति सम्पन्न संस्थाओं के बैर तथा विरोधी रुख का सामना करना पड़ा था। दुर्भाग्य से राजनीतिक वर्ग तथा कुर्सी पर बैठे अधिकारी तंत्र ने पंचायती राज संस्थाओं के उभरते हुए नेतृत्व को एक प्रतियोगी जमात के रूप में समझा जिनके साथ किसी प्रकार की निकटता और सहयोग वे खासतौर पर नहीं करना चाहते थे। राज्य सरकारें जो मुख्यतया इन संस्थाओं को पोषित करने की जिम्मेदार थी, उनका रवैया भी उपेक्षा का हो गया था। आश्चर्य नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर भी इन संस्थाओं को अत्यधिक उपेक्षा सहन

करनी पड़ती थी, हालांकि उनके बारे में यदाकदा चिन्ता प्रकट करने के वक्तव्यों के कुछ उदाहरण मिल जायेंगे। लेकिन ये वक्तव्य अरण्य-क्रन्दन मात्र ही हैं।

इस समिति का यह मत है कि पंचायती राज संस्थाओं के पतन का कारण संकल्पना की स्पष्टता में कमी, राजनैतिक इच्छा का अभाव तथा राष्ट्रीय प्राथमिकता की अवहेलना था। अनुसन्धान, मूल्यांकन, प्रतिपुष्टि की निरन्तर प्रक्रिया के अभाव तथा इस सम्बन्ध में कोई सुधारात्मक उपाय न किए जाने के परिणामस्वरूप ये संस्थायें एक अंधी गली में भटक कर रह गई हैं।

इस समिति का यह मत है कि समग्र देश में पंचायती राज संस्थाओं का संख्यात्मक तथा भौगोलिक रूप से विस्तार करना तब तक सार्थक नहीं है, जब तक उनकी अनुस्थापना में उद्देश्यपूर्ण परिवर्तन नहीं किया जाता। इन संस्थाओं को एक सदप्रयोजन की ओर मोड़ा जा सकता है। किन्तु यहां तो कुएं में ही भंग पड़ी हुई है जिसका सारा पानी ही बदलना होगा। जन-स्तर से ही प्रजातंत्र की संकल्पना के लिए पंचायती राज संस्थाओं को पूर्णतया प्रभावी और विश्वसनीय बनाने में उत्प्रेरण तथा विरेचन का स्थायी साधन बन सकती है।

संकल्पना का चिन्तन

सर्वप्रथम, समिति द्वारा पंचायती राज संस्थाओं की स्वशासन की आधारभूत यूनिटों के रूप में संकल्पना की गई है। समिति ने भारतीय गांवों तथा ग्राम सभा को हमारे प्रजातांत्रिक राष्ट्र के जनवादी आधार के रूप में लिया है। समिति द्वारा ग्राम सभा को प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की प्रतिमा के रूप में माना गया है।

समिति का यह विश्वास है कि पंचायती राज संस्थाओं की संकल्पनाओं की प्रेरणा का स्रोत, निश्चय ही ग्राम स्वराज की शुद्ध संकल्पना में निहित है। यही संविधान के अनुच्छेद 40 का स्पष्ट अधिदेश तथा पृष्ठभूमि है। समिति का यह मत है कि स्वशासन की यूनिटों के रूप में ग्राम पंचायतों की संकल्पना, संवैधानिक अधिदेश का केन्द्रीय और अभिन्न भाग है तथा जीवन्त ग्रामीण वास्तविकता के रूप में अधिक जीवनदायक है। समिति का विचार है कि गांवों को पुनर्गठित किया जाए और सक्षम ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिए सामूहिक रूप से उनको समूहित तथा बड़ा किया जाए। इन गांवों को प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के उपाय के रूप में स्वशासन की बुनियादी और एक समान यूनिटों के रूप में बने रहना चाहिए।

समिति को इस तथ्य की जानकारी है कि हमारे देश में गांवों की आबादी के आकार में काफी भिन्नता पाई जाती है। इसमें संदेह नहीं कि क्षेत्र का जनांकिकीय आकार प्रौद्योगिकी के कारगर स्थानान्तरण, स्वास्थ्य सेवाओं का संगठन, शिक्षा, कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों तथा अन्य कल्याणकारी गतिविधियों के लिए संगत है। प्रजातांत्रिक स्वराज, प्रौद्योगिक स्थानांतरण तथा आर्थिक विकास की वर्तमान प्रक्रिया में क्षेत्रीय सीमाओं को युक्ति संगत बनाना तथा जनसंख्या का आकार काफी महत्वपूर्ण लक्ष्य है। समिति सिफारिश करती है कि हमारे देश में संगत मानदण्ड के आधार पर गांव का पुनर्गठन किया जाए जिसमें पहचान, निरन्तरता, समीपता, समरूपता, संचार तथा तकनीकी आर्थिक जनांकिकीय तथा सांस्कृतिक तथ्यों को भी ध्यान में रखा जाए। समिति यह महसूस करती है कि बड़ी तथा सक्षम ग्राम इकाइयां बनाने की आवश्यकता है। हमारी आदर्श ग्राम पंचायतों में 5000 अथवा इससे कम जनसंख्या होनी चाहिए। किन्तु जनांकिकीय आकार केवल एक संगत आयाम है। ऐसे भविष्य के गांव होंगे। पुनर्गठित किए गए गांवों की सीमा निर्धारण का काम स्पष्ट रूप से निर्धारित मानदण्ड के आधार पर एक अधिनियम के अधिदेश के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य वरीयता में एक विशेष आयोग द्वारा किया जाना चाहिए, जिसको जन भावनाओं तथा लोकप्रिय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए संतुलित ढंग से लागू करना होगा। तथापि, समिति शासन की बुनियादी यूनिटों के रूप में उनमें समाहित अनेक गांवों वाली बड़ी संघीय मण्डल यूनिटों को संकल्पना से सावधान करना चाहेगी। यद्यपि, आयोजना की दृष्टि से संघीकृत मण्डल प्रशासनिक रूप से अधिक कुशल प्रतीत हो सकते हैं, वे प्रजातांत्रिक रूप से अपेक्षाकृत भरे-पूरे और आत्मनिर्भर होंगे।

बुनियाद से ऊपर की ओर एक विशाल संस्थागत ढांचे के निर्माण में पंचायती राज संस्थाओं को, भवन के निर्माण में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के रूप में ही संगठित किया जाना चाहिए, ऊपर से दी गई बख्शीस के रूप में नहीं। पंचायती राज संस्थाओं को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में देखा जाना चाहिए, जो सहज ही स्वशासन की संकल्पना के एक भाग के रूप में आयोजना और विकास की

प्रक्रिया में लोगों को शामिल करने में मदद करेगी। विकास आयोजना प्रजातंत्रीय आयोजना होनी चाहिए। समिति ने यह महसूस किया है कि अधिकारी तंत्र तथा थोपी गई नीतियों से सही रूप में लोगों का सहयोग प्राप्त नहीं किया जा सकता।

पंचायती राज गति के दिशा में सामुदायिक और सामाजिक एकजुटता, जाति, धर्म, लिंग के अवरोधों और धन की असमानता को दूर करने और सामाजिक कमजोरियों तथा अभावों पर काबू पाने की ओर उन्मुख होनी चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं को राष्ट्रीय आचरण के समरसता, धर्म निरपेक्षता तथा सामाजिक समानता के लिए एक साधन के रूप में कार्य करना चाहिए। विशेष कार्यक्रमों तथा जनसंचार माध्यमों के प्रभावी उपयोग द्वारा ही इसे एक संजग प्रक्रिया के रूप में करना होगा।

संवैधानिक सुरक्षा की आवश्यकता

संविधान में एक नया अध्याय शामिल करके स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता, संरक्षण तथा परिरक्षण दिया जाना चाहिए। स्थानीय स्वशासन तथा विशेषकर पंचायती राज संस्थाओं को सरकार के तीसरे स्तर के रूप में संवैधानिक संशोधनों की भावना की सराहना करती है जिनका प्रारूप कई वर्ष पहले बीज रूप में 1974-75 में डा. एल.एम.सिघवी की अध्यक्षता में गठित एक समिति द्वारा बनाया गया था जिसमें श्री एस.के.डे. (सामुदायिक विकास के पूर्व मंत्री), श्री आर.सी.एस. सरकार (पूर्व विधि सचिव और अध्यक्ष, संघ लोक सेवा आयोग) सदस्य थे।

समिति ने इस विचित्र घटना के बारे में चिंता व्यक्त की है कि अधिकांश राज्यों में पंचायती राज निकायों की कानूनन निर्धारित अवधि समाप्त होने के बाद कई वर्षों तक चुनाव नहीं कराए गए हैं। चुनाव आयोजित करने में अधिकतम मामलों के कारण काफी गम्भीर और निराशाजनक थे। उनके अधिदेश का नवीकरण किए बिना, पंचायती राज संस्थायें मात्र ढपोल शंख अथवा जोड़-तोड़ बैठाने का साधन बन गई थीं। निश्चय ही, किसी प्रजातांत्रिक संस्था के लिए निर्वाचित अधिदेश प्राणवायु होता है। पंचायती राज संस्थाओं को उस प्राणवायु से वंचित रखना उनका श्वास रोकने या गला घोंटने के समान है।

समिति का यह विचार है कि निर्धारित अवधि के समाप्त होने पर सुनिश्चित रूप से पंचायती राज निकायों के चुनाव आयोजित किए जाने चाहिए। पंचायती राज निकायों के लिए नियमित, निर्भय तन्त्र, निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक प्रावधान किया जाना चाहिए और यह कार्य आयोग अथवा इसी प्रकार की अन्य व्यवस्था के माध्यम से भारत के निर्वाचन आयोग को सौंप दिया जाना चाहिए। किसी प्रकार भी पंचायती राज संस्था को छः अथवा सात महीनों से अधिक रहने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। ये चुनाव लोक सभा तथा राज्य विधान सभा के लिए तैयार की गई निर्वाचन सूची के आधार पर आयोजित करने चाहिए।

पंचायती राज विवादों के लिए न्यायिक अधिकरण

राजनीतिक प्रभाव से अथवा हस्तक्षेप की आशंकाओं तथा आरोपों से बचने के लिए प्रत्येक राज्य में एक पंचायती राज न्यायिक अधिकरण की स्थापना के लिए सिफारिश पर अनुकूलता से विचार करेगी जो चुनावों, निलम्बनों, अधिक्रमणों, विघटनों तथा पंचायती राज संस्थाओं के कार्य तथा निर्वाचित कार्यकर्ताओं से सम्बन्धित अन्य मामलों में विवादों का निर्णय करे।

पंचायती राज संस्थाओं को प्रभावकारी ढंग से कार्य करने हेतु पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की उपलब्धि सुनिश्चित करने के लिए अर्थोपाय खोजे जाने चाहिए। समिति ने यह देखा है कि स्थानीय स्वशासन संस्थाएं प्रायः अपनी कराधान शक्ति का उपयोग करके राजस्व संसाधनों में वृद्धि करने की अनिच्छुक होती हैं। समिति इस प्रवृत्ति पर चिन्ता प्रकट करती है और आशा करती है कि इस पर धीरे-धीरे काबू पा लिया जाएगा। समिति अनिवार्य तथा वैकल्पिक शुल्कों के नमूनों और विषयों की सूची देने के बारे में सुझाव देना चाहेगी जिनके बारे में कर और शुल्क लगाने की शक्तियां पंचायती राज संस्थाओं को सौंपी जाएं जिनमें ऐसा प्रावधान किया जाए कि एक निर्धारित अवधि तक राज्य सरकारें पंचायती राज की ओर से कर वसूल करेंगी और प्रत्येक राज्य में वित्त आयोगों की सिफारिशों के आधार पर उनमें वितरित करेंगी। समिति यह सुझाव भी देती है कि संविधान के अंतर्गत केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किए गए वित्त आयोग द्वारा पंचायती राज संस्थाओं के लिए पर्याप्त निर्धारित प्रावधान किया जाना चाहिए। समिति आगे यह भी सिफारिश करती है कि विभिन्न ग्रामीण विकास तथा गरीबी निवारण कार्यक्रमों के लिए आबंटित किए गए संसाधनों को पंचायती राज संस्थाओं

के जरिए उपलब्ध कराया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप उन्हें शक्ति तथा प्रभाव हासिल होगा।

दलगत राजनीति और पंचायती राज

समिति का यह मत है कि राजनीतिक दलों से संबंधित व्यक्तियों को पंचायती राज संस्थाओं में दखलन्दाजी से कानूनन रोकना न तो व्यवहारिक है, न ही वांछनीय। यदि सर्वसम्मति नहीं हो पाती और यदि चुनाव होते हैं, लेकिन जब तक पार्टियां चुनाव प्रक्रिया में सक्रिय रहती हैं, कानून में प्रावधान कर देने से उस स्थिति में निश्चय ही कोई परिवर्तन नहीं होने वाला, भले ही चुनावों में कोई भी पार्टी चिह्न दिया जाए। अतः ऐसी स्थिति में वास्तव में कुछ न कुछ बताने की आवश्यकता है ताकि खुली चुनाव प्रतियोगिता तथा मुकाबले में एक स्वच्छ सहजीवन पनपे जो दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय राजनीति का ही एक अंग है। समिति का यह विचार है कि राजनीतिक पार्टियों की भूमिका या इस संबंध में राजनैतिक पार्टियों द्वारा स्वतः व्यक्त त्याग, आत्म-संयम द्वारा राजनैतिक पार्टियों की सर्वसम्मति से ही कोई समझौता किया जाए, उसे कानूनी निषेध का मामला बनाकर नहीं। संभवतः यह मामला प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद में तथा विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के नेताओं से विचार-विमर्श करके सुलझाया जाएगा। इस संबंध में, समिति राजनैतिक पार्टियों तथा अन्य के उत्तर की प्रतीक्षा में है ताकि समिति द्वारा इस संबंध में कोई व्यावहारिक क्रियान्वित होने वाली तथा सर्वसम्मत सिफारिशें तैयार की जा सके। इस संबंध में वर्तमान स्थिति की निष्पक्ष तथा सही-सही समीक्षा की आवश्यकता है।

न्याय पंचायतें

समिति का यह मत है कि स्वशासन तथा विधि शासन की सामाजिक आदतों के विकास के लिए न्याय पंचायतों का योगदान बहुमूल्य है। न्याय पंचायतों को अधिनिर्णय के साथ-साथ मध्यस्थता तथा समझौते आदि के कार्य भी सौंपे जाने चाहिए। समिति यह सुझाव देती है कि कुछ एक ग्राम समूह के लिए एक न्याय पंचायत हो जो चुनाव द्वारा या इस उद्देश्य के लिए तैयार किए जाने वाले विशेष पैनल में से गठित की जाए। इसके अलावा, विवाद में उलझे प्रत्येक पक्ष की किसी पैनल में से एक न्याय पंच चुनने की अनुमति होगी जिसकी अध्यक्षता एक व्यावसायिक न्यायाधीश द्वारा की जाए, जैसा कि मध्यस्थ-निर्णय के मामले में होता है। इसके विकल्प के रूप में, उनका चुनाव सर्वसम्मति से, जहां तक संभव हो प्राथमिक पंचायत एककों में, ही किया जाए। यह भी सुझाव दिया जाता है कि समुचित योग्यताएं तथा प्रशिक्षण भी निर्धारित किया जाए तथा रिकार्डों को रखने, नोटिस या सम्मन आदि देने के लिए कुछ स्थायी कर्मचारी नियुक्त किये जाएं। इस संबंध में, समिति ग्राम न्यायालयों के रूप में स्थानीय न्याय प्रक्रिया की एक अन्य विधा के संबंध में विधि आयोग द्वारा हाल ही में की गई सिफारिशों के संपूर्ण निहितार्थों तथा स्वरूपों पर भी विचार करना चाहेगी।

समन्वित प्रशासनिक ढांचे के लिए तर्क

ग्रामीण विकास के वर्तमान प्रशासनिक प्रबन्धों तथा गरीबी निवारक कार्यक्रमों की समिक्षा समिति की आयोजना तथा विकास के लिए समन्वित प्रशासनिक ढांचे के संबंध में की गई सिफारिशों से समिति पूरी तरह सहमत है। यह विशेषतः उल्लेख करना उचित समझती है कि आयोजना तथा विकास के लिए ये प्रशासनिक ढांचे सक्रिय तथा स्वतंत्र होने चाहिए तथा साथ ही इनका स्थानीय स्वशासन की ऐसी संस्थाओं के साथ समन्वय हो जो कि अपनी सक्रियता तथा स्वतंत्रता खो रही हैं।

विभिन्न विशेष विभागों के प्रमुख तकनीकी तथा प्रशासनिक अधिकारी अपने अधीन तन्त्र के साथ जिला परिषद के संगठनात्मक तथा प्रशासनिक ढांचे के अंग होने चाहिए। जिला विकास आयुक्त जिला परिषद का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा। जिला विकास आयुक्त को जिला स्तर पर विभिन्न विभागों, एजेंसियों तथा संस्थाओं के योजना तथा कार्यान्वयन कार्यकलापों में समन्वय लाने का कार्य सौंपा जाना चाहिए।

ऊंचे चरित्र, योग्य व पंचायती राज संस्थाओं के प्रति सहानुभूति रखने वाले अधिकारियों को पंचायती राज अधिकारी के रूप में कार्य करने के लिए रखा जाना चाहिए।

कार्य प्रशासन के प्रत्येक अधिकारी को पंचायती राज तथा ग्रामीण विकास के कार्य में अवश्य लगाया जाये ताकि हमारा लोक प्रशासन ग्रामीण भारत की समस्याओं से सुपरिचित हो सके।

प्रशासनिक ढांचे ऊपर से भारी न हों तथा प्रशासनिक अधिकारियों को पंचायती राज संस्थाओं के महत्व की जानकारी दी जाये तथा उनके प्रति उनको उत्तरदायित्व सौंपा

जाए।

पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत बनाने तथा जिन्हें मतदाताओं, निर्वाचित प्रतिनिधियों, प्रशासनिक अधिकारियों तथा स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं के रूप में पंचायती राज संस्थाओं में कार्य करने के लिए बुलाया जाता है, उनके निष्पादन को बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण अनुसंधान तथा लोक शिक्षण के साधन जुटाना आवश्यक है। इन साधनों को जुटाने में स्वैच्छिक संस्थाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। समिति यह महसूस करती है कि लोकतान्त्रिक संस्थाओं के निर्माण में यह एक बहुत ही उत्पादक तथा लाभदायक निवेश होगा।

संविधान के प्रस्तावित नए अध्याय में एक आदर्श विधान तैयार किया जाए जिसमें अलग-अलग क्षेत्रों के अनुकूल परिवर्तन करने की काफी गुंजाइश हो।

राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरीय स्थानीय स्वशासन संस्थानों तथा जिला स्तरीय प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की जाए तथा उन्हें पंचायती राज तथा शहरी स्थानीय संस्थाओं से संबंधित प्रशिक्षण, मूल्यांकन तथा अनुसंधान की जिम्मेवारियां सौंपी जाएं। ये संस्थान तथा केन्द्र स्थानीय स्वशासन से संबंधित सूचना देने वाले केन्द्र के रूप में कार्य करें तथा उस क्षेत्र में होने वाले विकास की निगरानी करें तथा सूचना दें।

प्रस्तावित राष्ट्रीय स्वशासन संस्थान को अनुसंधान तथा मूल्यांकन कार्यों के बारे में विश्वविद्यालयों, अनुसंधान निकायों तथा स्वैच्छिक संगठनों, जैसे अखिल भारतीय पंचायत परिषद का उपयोग करना चाहिए जिसका इसके साथ सलाह देने का संबंध हो, और जो सूचना के प्रचार व प्रसार तथा समुचित प्रेरणा का अमूल्य स्रोत हो।□

सिंघवी समिति द्वारा पंचायती राज सम्बंधी तैयार किए गए संकल्पना-प्रपत्र से उद्धृत

अनुवाद : किरण गुप्ता

पंचायती राज पर उनके विचार

1. पंचायत शब्द में एक प्राचीन भावना जुड़ी हुई है। यह एक अच्छा शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ है – गांव के पांच चुने हुए व्यक्तियों की सभा। यह उस प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें भारत के अंसख्य गणराज्यों का प्रशासन होता था परन्तु ब्रिटिश सरकार ने लगान वसूली के अपने क्रूर तरीके अपना कर इस प्राचीन गण-व्यवस्था को लगभग नष्ट कर दिया।

यंग इंडिया, 28.5.31, पृ. 12

2. न्याय करने का दायित्व ग्राम पंचायतों का होगा और अलग से न्याय पंचायतों का गठन नहीं किया जाएगा। गरीब किसान को न्याय पाने के लिए गांव से बाहर जाने और मुकद्दमेबाजी पर अपने पसीने की गाढ़ी कमाई और वक्त बरबाद करने की जरूरत नहीं रहेगी। वह गांव में ही आवश्यक गवाहियां जुटा सकता है और वकीलों के शोषण से बच कर अपना मुकद्दमा खुद लड़ सकता है। कोई जटिल कानूनी पेंच सामने आने पर तालुका या जिले का मुंसिफ गांवों में जाकर कठिन मामलों को सुलझाने में पंचायत की सहायता कर सकता है। मुंसिफ गांव के भोले-भाले लोगों को सरकारी कानूनों की जानकारी देकर उनके मित्र, मार्गदर्शक और दार्शनिक के रूप में काम करेगा। इस तरह की न्यायिक प्रणाली एकदम सरल, सस्ती और जल्दी न्याय दिलाने वाली होगी। इसके अलावा गांव के फौजदारी और दीवानी मुकद्दमे के सभी पहलुओं की कमोबेश हर तरह की जानकारी गांव वालों को होगी ही, इसलिए धोखाधड़ी और कानूनी दावपेंच की भी बहुत कम गुंजाइश रहेगी।

हरिजन 22.7.1946

3. स्वतंत्रता नीचे से शुरू होनी चाहिए। इस प्रकार हर गांव या पंचायत पूरे अधिकारों से युक्त बन जाएगा। इसलिए हर गांव को आत्मनिर्भर होना चाहिए और... अपने मामलों का प्रबंध करने में उसे सक्षम होना चाहिए।... लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पड़ोसी से या दुनिया से मदद लेने की इच्छा या निर्भरता एकदम खत्म हो जाए। यह आपसी ताकतों का स्वतंत्र और स्वैच्छिक खेल होगा। इस प्रकार का समाज निश्चय ही बहुत सभ्य होगा जिसमें हर स्त्री-पुरुष को यह जानकारी होगी कि उसे क्या करना है और वह इससे अधिक क्या कर सकता है। वह यह भी जानता है कि किसी व्यक्ति को किसी भी ऐसी वस्तु की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए जिसे उतना ही श्रम करके कोई अन्य व्यक्ति प्राप्त न कर सके।

हरिजन 22.7.1945, पृ. 236

4. पंचायतों को जितना ही ज्यादा अधिकार होगा लोगों के लिए वह उतना ही बेहतर होगा। पंचायतों को प्रभावी और सक्षम बनाने के लिए लोगों की शिक्षा के स्तर में पर्याप्त वृद्धि करनी होगी। मैं लोगों की प्रहार शक्ति में वृद्धि की बात नहीं सोचता बल्कि उनकी नैतिक शक्ति में वृद्धि चाहता हूँ।

हरिजन 21.12.1947

5. भारत के वास्तविक लोकतंत्र में इकाई गांव ही था। यदि एक भी गांव पंचायतराज, जिसे अंग्रेजी में 'रिपब्लिक' कहा जाता था, की इच्छा करता था तो उसे कोई रोक नहीं सकता था। सच्चे लोकतंत्र को केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति नहीं चला सकते। इसे प्रत्येक गांव में निचले स्तर से लोगों द्वारा चलाया जा सकता है।

प्रार्थना सभा, नई दिल्ली, 6.1.1948

. यदि हम पंचायती राज की लोकतंत्री प्रणाली कायम रखना चाहते तो हम छोटे से छोटे तथा निम्न से निम्न भारतीय को बड़े से बड़े शासक के समान मानेंगे। इसके लिए हरेक को ऐसा ही बनना होगा। जिसका मन निर्मल है, वह सबा बुद्धिमान होगा। वह एक जाति से दूसरी जाति के बीच, स्पृश्य और अस्पृश्य के बीच कोई भेदभाव नहीं रखेगा बल्कि हर एक को अपने ही समान समझेगा। वह अन्य लोगों को अपने प्रेम के बंधन में बांध लेगा।

हरिजन बंधु, 18.1.1948

. पंचायतों का यह कार्य है कि वे ईमानदारी और मेहनत को बनाए रखें। पंचायत का यह कार्य है कि वे गांव के लोगों को विवादों से दूर रहना सिखाएं। यदि विवाद हों तो वे उनका समाधान कर लें। इससे बिना खर्चे के उन्हें जल्दी न्याय मिल जाएगा।

. मेरी राय में ऐसा कानून नहीं है जहां यदि लोग चाहते हैं तो पंचायत के कार्य-संचालन को रोका जा सकता है। गांवों के हर ग्रुप के लोग या लोगों का ग्रुप पंचायत प्रणाली अपनाए रख सकता है, भले ही बाकी भारत में यह हो या न हो। सच्चे अधिकार तो कर्तव्य के पालन से अपने आप ही प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे अधिकारों को कोई छीन नहीं सकता। पंचायत लोगों की सेवा करने के लिए है।

हरिजन 18.1.48

पृ. 519

. असली प्रतिशत से अधिक लोग गांवों में रहते हैं। भारत गरीब है क्योंकि भारत के गांव गरीब हैं। यदि भारत के गांव धनी हो जाएं तो भारत धनी हो जाएगा। इसलिए भारत की बुनियादी समस्या भारतीय गांवों से गरीबी हटाना है। कुछ वर्ष पहले हमने भारत के विभिन्न हिस्सों में जमींदारी और जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया, क्योंकि भारत के गांव भूमि के स्वामित्व की अर्द्ध-सामंतवादी प्रथा में फल-फूल नहीं सकते। इतना ही नहीं, हमें अभी और आगे जाना है...। पहला, हर गांव में अर्ध-स्वशासी पंचायत होनी चाहिए, जिसमें सहकारी समिति होनी चाहिए... पंचायत को और अधिक अधिकार दिए जाने चाहिए क्योंकि हम चाहते हैं कि गांवों के लोगों को अपने गांवों में असली स्वराज मिले। हमारे पास अधिकार होना चाहिए लेकिन हर बात बड़े अधिकारियों तक नहीं पहुंचानी चाहिए। हम नहीं चाहते कि अधिकारी गांव के लोगों की जिन्दगी में बहुत ज्यादा दखलंदाजी करें। मैं गांवों से ही स्वराज का निर्माण शुरू करना चाहता हूं।

गांधीजी, हरिजन, 18.1.1948

सभी को समान अवसर

1. आपको आपसी सहयोग से काम करना चाहिए। राजनीतिक जीवन में हर एक के पास वोट का अधिकार है, आर्थिक मामलों में हर एक को बराबर मौका है, हमारी पंचायतों में सभी को बराबर माना जाना चाहिए, स्त्री और पुरुष, ऊंचे तथा नीचे का कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। हमें एकता और भाईचारे की भावना तथा अपने काम में और खुद में विश्वास के साथ आगे बढ़ना चाहिए।

2. भारत तभी प्रगति करेगा जब गांवों में रहने वाले लोग राजनीतिक दृष्टि से सजग हो जाएं। हमारे देश की प्रगति हमारे गांवों की तरक्की से जुड़ी हुई है। यदि हमारे गांव और तरक्की करेंगे तो भारत एक मजबूत राष्ट्र बनेगा और कोई भी इसके आगे बढ़ने से रोक नहीं सकता। यदि आप अपने संकल्प से डिग गए और आपसी झगड़ों तथा तुच्छ गुटबाजी में पड़ गए तो आप अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकते।

4. कुछ लोगों का विचार था कि यदि लोगों को जिम्मेदारी सौंप दी गई तो शायद वे इसे ढो नहीं सकेंगे। लेकिन लोगों को मौका देने के बाद ही उन्हें जिम्मेदारी वहन करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। यह आवश्यक हो गया कि एक साहस भरा कदम उठाया जाए जिससे ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदारी लोगों को सौंपी जा सके। लोगों की केवल राय नहीं लेनी है बल्कि उन्हें कारगर ताकत सौंपनी है।

जवाहरलाल नेहरू, 2 अक्तूबर, 1959 को नागौर, राजस्थान में भाषण

3 मैं आशा करता हूं कि आपके अध्यक्ष, सरपंच और अन्य पदाधिकारी उसी तरह काम नहीं करेंगे। जो अधिकारी दबंग बन जाता है और हमेशा अफसरशाही वाले तरीके अपनाता है, लोगों का सहयोग नहीं प्राप्त कर सकता। बढ़िया अफसर बराबरी की भावना से काम करता है। तभी वह दूसरों को प्रशिक्षण दे सकता है।

जवाहरलाल नेहरू, 2 अक्तूबर, 1959 को नागौर, राजस्थान में भाषण

लोकतंत्र हिन्दुस्तान के लिए कोई नई बात नहीं है क्योंकि इसकी जड़ें हमारी पुरानी पंचायत प्रणाली में पाई जा सकती हैं। यह प्रणाली शायद इसलिए अस्तित्व में आई क्योंकि गांव और लोग राजनीतिक सत्ता के केन्द्र से बहुत दूर हो चुके थे। आज यह प्राचीन संस्था ज़िला स्तर पर और ब्लाक स्तर पर स्व-शासन का एक अंग बन गई है और सरकार के कार्यक्रमों तथा जनता के बीच एक कड़ी का रूप ले चुकी है।

इंदिरा गांधी
रायल इंस्टीट्यूट आफ इंटरनेशनल रिलेशन्स, लंदन में 29 अक्तूबर, 1971 को भाषण

प्राचीन काल से ही हमारे गांव प्रशासन की बुनियादी इकाई रहे हैं और वे ही हमारे लोगों की उन्नति में एक बड़ा हाथ बंटा सकते हैं। हमने ग्राम पंचायतों को एक मजबूत बुनियाद पर खड़ा करने की कोशिश की है और यह भी कोशिश की है कि वे प्रशासन की एक सक्रिय इकाई के रूप में कार्य करें। उनको गांव के लोगों के कल्याण से संबंधित अधिकांश कार्य इसीलिए सौंपे गए हैं।

प्रत्येक गांव के नागरिक कार्यों और आर्थिक कार्य-कलापों को सुचारू रूप से देखभाल करने के लिए पर्याप्त सत्ता-सम्पन्न पंचायत और एक अच्छी सहकारी समिति का होना आवश्यक है, इसलिए सत्ता का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए। इसके बिना न तो शांति स्थापित होगी और न सुरक्षा, न ही समृद्धि आएगी।

ये कार्यक्रम केवल तभी सफल हो सकते हैं, जब सभी लोग और खासकर जिनको उनसे फायदा होने वाला है वे सब पूरी तरह जागरूक रहें, और अपना भरपूर सहयोग देते रहें। आपसी सहयोग, स्वयंसेवा और आत्मनिर्भरता की भावना का वातावरण बनाने में पंचायती राज को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। मंजिल अभी तो दूर है मगर हमें वहां तक पहुंचने से कोई रोक नहीं सकता।

गांव के लोग भी पंचायतों का निर्माण करते हैं और उनका नियंत्रण भी उन्हीं के हाथों में होना चाहिए। हमें यह समझ लेना चाहिए कि एक पंचायत किसी गांव की सभी प्रकार की ताकतों का मिला-जुला रूप होती है और इसीलिए उसे जातिवाद और गुटबंदी से, किसी भी प्रकार के पक्षपात, द्वेष, एक-दूसरे पर दोषारोपणों और आपसी झगड़ों से मुक्त रखा जाना चाहिए। पंचायत के सदस्यों को यह ध्यान रखना चाहिए कि गांव के अन्य लोगों के अधिकारों का भी हनन न हो।

मुझे पंचायती राज-व्यवस्था से काफी उम्मीदें हैं। काफी कुछ आपके काम पर निर्भर करता है। मुझे आशा है कि आप लोग वर्तमान चुनौतियों का सहर्ष सामना करेंगे।

— इंदिरा गांधी
3 अप्रैल, 1984 नई दिल्ली

पंचायतों को मजबूत बनाना आवश्यक

श्री एस. के. डे द्वारा आम लोगों को अधिकार सौंपने पर बल

भूतपूर्व सामुदायिक विकास और पंचायती राज मंत्री श्री एस.के.डे इस समय 83 वर्ष के हैं, किन्तु अब भी पंचायती राज व्यवस्था और आम लोगों को अधिकार सौंपने की प्रक्रिया उनकी सांसों में बसी है। देश के विभाजन के पश्चात वे अन्य असंख्य शरणार्थियों के साथ भारत आए और कुरुक्षेत्र में शरणार्थी शिविरों में रहे। उन्होंने अमेरिकन जरनल इलेक्ट्रिक कम्पनी की एक सहायक भारतीय कम्पनी के मैनेजर के पद से त्यागपत्र दे दिया और कुरुक्षेत्र में पुनर्वास के काम में जुट गए। उन्होंने नीलोखेड़ी में प्रायोगिक तौर पर कृषि-औद्योगिक बस्ती बनाई। तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरु तीन बार उस क्षेत्र में गए और श्री डे के उस एकाकी प्रयास को देखकर अत्यंत प्रभावित हुए। इसी कारण नेहरु ने योजना आयोग में सामुदायिक परियोजना प्रशासन का कार्यभार उन्हें सौंप दिया।

नेहरु जी के विचारों को कार्यरूप देने के लिए चलाए गए विकास कार्यक्रमों के प्रेरणा स्रोत श्री डे ही थे। खुद काम में लगे रहने के कारण वे दूसरों से भी खूब काम लेना जानते थे। 2 अक्टुबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए नेहरु जी ने एकदम संक्षिप्त भाषण दिया तो श्री डे ने सभी राज्यों को परिपत्र भेजा जिसमें कहा गया कि अब काम का समय आ गया है। अब बातें नहीं चलेंगी। जवाहरलाल नेहरु ने सामुदायिक परियोजनाओं को पंचवर्षीय योजनाओं के सफल क्रियान्वयन की प्रेरक शक्ति बताया था।

सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार योजनाएं समूचे देश में लागू की जानी थीं। इस बीच बलवंतराय मेहता समिति की रिपोर्ट आई (1958) जिसमें तीन स्तरों वाली पंचायती राज प्रणाली का सुझाव दिया गया। नेहरु जी ने 2 अक्टुबर 1959 को नागौर में दीप प्रज्वलित करके इस प्रणाली का श्रीगणेश किया। बाद में उन्होंने कहा, "इन्हीं दीपों के प्रकाश से चारों ओर फैले अंधकार को दूर करना होगा।" 1966 तक श्री डे इस ज्योति को थामे रहे ताकि वह बुझने न पाए।

27 और 28 जनवरी 1989 को आयोजित हो रहे पंचायती राज सम्मेलन से पहले कुरुक्षेत्र पत्रिका ने श्री डे से भेंट करके पंचायती राज व्यवस्था की मौजूदा स्थिति के बारे में उनके विचार जानना उचित समझा। वे वर्तमान स्थिति से प्रसन्न नहीं हैं, बल्कि काफी नाराज हैं। किन्तु वे निराश नहीं हैं क्योंकि आम लोगों में उनकी आस्था अडिग है।

श्री डे कहते हैं "बिचौलिए व व्यापारी जनता की शक्ति के संरक्षक बन गए हैं, और वे इसे छोड़ने को तैयार नहीं हैं। एकदम यही हो रहा है। प्रधानमंत्री अकेले क्या कर सकते हैं?"

सार्वजनिक हित के लिए निस्वार्थ सेवा की आवश्यकता पर बल देते हुए वे राय व्यक्त करते हैं, "जब तक राजनेताओं में त्याग की भावना नहीं होगी, तब तक पंचायती राज अथवा सहकारी समाज की रचना नहीं हो सकतीं। नेहरु जी के बिना मैं कुछ नहीं कर पाता।"

पंचायती राज को एक प्रणाली के रूप में विकसित करने के विषय में उनका कहना है "आप कुछ नहीं कर सकते। सरकार कुछ नहीं कर सकती। आवश्यकता यह है कि ऐसे दल गठित किए जाएं जिनकी रूचि अपने में नहीं बल्कि जनता में हो।"

1958 में उन्होंने 'कुरुक्षेत्र-ए-सिंपोजियम' में जो लिखा

था उसकी चर्चा कर लेना समीचीन होगा। उन्होंने लिखा "हमारी संसद को बने भले ही बहुत कम समय हुआ है, किन्तु वह बढ़िया काम कर रही है। राज्य विधान मंडल भी अनेक कठिनाइयों के बावजूद ठीक काम कर रहे हैं। परन्तु विधान मंडलों से नीचे के स्तर पर आज लोगों की कोई संस्था नहीं है जिसे सही अभिव्यक्ति अथवा सही प्रेरणा मिल रही है।"

"ग्रामीण लोगों की बुनियादी मांगें पंचायती राज के माध्यम से रखी जानी चाहिए और पंचायती राज का सहयोग आवश्यक है। और कोई चारा ही नहीं है।" परन्तु वे वर्तमान स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं। उनका कहना – "ज़रा आज की हालत देखिए। विपक्ष का एकमात्र कार्यक्रम है 'राजीव हटाओ' जैसे कि राजीव गांधी ने देश को आगे बढ़ने से रोका हुआ है।"

श्री डे निराशावादी बिल्कुल नहीं हैं। वे कहते हैं कि मैं कभी निराशावादी नहीं रहा। महात्मा गांधी के शब्दों को उद्धत करते हुए वे कहते हैं। "स्वराज की मेरी धारणा सत्ता को कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित करना नहीं, बल्कि सत्ता के नियमन के लिए अधिक लोगों द्वारा क्षमता प्राप्त करना है।"

श्री डे ने पुरानी यादों में डूबते हुए कहा – "आपको 1952 से कुरुक्षेत्र पत्रिका के अंक पढ़ने से पता चलेगा कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम में काम कर रहे हम लोग धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुंच रहे थे कि विकास विभाग की विभिन्न एजेंसियों के बीच तालमेल लाए बिना सामुदायिक विकास गतिविधियां नहीं चलाई जा सकतीं।"

आज भी श्री डे का मानना है कि समस्या मनुष्य तथा उसकी स्वतंत्रता से भी बड़ी है। अब्राहम लिंकन के शब्दों में वे कहते हैं – "क्योंकि मुझे दास बनना पसंद नहीं है, इसलिए मैं मालिक नहीं बनूंगा।" यही लोकतंत्र की परिभाषा है, जिसका सर्वाधिक महत्व है।

जवाहरलाल नेहरू के सम्बंध में लगभग 20 वर्ष पूर्व दिसम्बर 1958 में उन्होंने लिखा था –

"प्रधानमंत्री जी ने कुछ दिन पूर्व दो-तीन बातों की चर्चा की जिनमें से एक पंचायतों के आकार के बारे में थी। यह एक बुनियादी बात है। पंचायत का आकार छोटा और समन्वित होना चाहिए ताकि सदस्यों के बीच गहरा सम्बंध हो और वे एक इकाई के रूप में काम कर सकें। उन्होंने दूसरी बात यह कही कि उन्हें पूरी जिम्मेदारी सौंपी जाए। यदि स्वतंत्रता के कोई मायने हैं तो उसका अर्थ गलतियां करने की आजादी भी है। हमें ऊपर बैठकर गरीब लोगों पर हुक्म चलाने का कोई अधिकार नहीं है, जोकि इस देश के वास्तविक शासक हैं। इसका मतलब है लोकतंत्र का नियंत्रण। इसे हर कीमत पर नींव से ही प्रारम्भ करना होगा।"

श्री डे ने इस सम्बंध में अपने जिन विचारों को दो दशक पहले ही सार रूप में व्यक्त कर दिया था, वे आज भी पूरी तरह से सार्थक हैं। "भारत में सामुदायिक विकास, पंचायती राज या सहकारी समाज आ ही नहीं सकता था। जो कुछ हुआ, वह नेहरू जी के कारण हुआ। वे भौतिक रूप से भले ही नेहरू जी हमारे साथ नहीं है किन्तु उनके भीतर धधकती ज्वाला की तपिश हम आज भी महसूस कर सकते हैं। वे इस कार्यक्रम के जनक थे और जीवन भर इसका पोषण करते रहे।"

वे कहते हैं कि नेहरू जी पूर्णरूपेण लोकतांत्रिक थे। वे अपने पद से कहीं अधिक महान थे।

– सुरेन्द्र तिवारी
विजय कुमार कोहली

पंचायती राज और विकेन्द्रीकरण

लक्ष्मी चन्द जैन

श्री लक्ष्मी चन्द जैन, पिछले चार दशकों से सामाजिक तथा ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सक्रिय और एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैं। वह भारत सरकार की कई विशेषज्ञ समितियों के सदस्य रह चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र तथा 'एस्कैप' (ESCAP) में सलाहकार रहे हैं और साथ ही विकास के विभिन्न पक्षों से संबन्धित कई पुस्तकों के लेखक भी हैं। वह हार्वर्ड तथा बेस्टन विश्वविद्यालयों के 'विजिटिंग फेलो' हैं। वह कर्नाटक के आर्थिक और योजना परिषद के उप सभापति और असम के आर्थिक सलाहकार परिषद के सदस्य भी हैं।

यह भेंटवार्ता निर्मल गांगुली द्वारा ली गई।

प्रश्नः जैन साहब, आपने तो ग्रामीण विकास और ग्रामीण औद्योगीकरण के क्षेत्र में काफी काम किया है। इस नजरिये से, क्या आप बताएँगे कि आयोजना प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण में पंचायती राज संस्थाओं की क्या भूमिका हो सकती है?

उत्तरः ग्रामीण विकास और ग्रामीण औद्योगीकरण का हमारा पिछला अनुभव बताता है कि गांवों में विस्तृत गरीबी और बेरोजगारी के संबंध में एवं इस दिशा में प्रयुक्त साधनों के संबंध में परिणाम बहुत सुखद नहीं रहे हैं। लगभग सभी यह मानते हैं कि लोगों को केन्द्रित करके विकास योजनाएं नहीं बनी हैं। हमारे इस अत्यंत विविधता भरे देश में, इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि राष्ट्रीय राजधानी या राज्यों की राजधानियों में बैठे कुछ नीतिनिर्माताओं द्वारा वास्तविक प्रगति लायी जा सकती है।

वास्तव में, वे कई लाख गांवों में फैली समस्याओं एवं संभावनाओं को समझने के लिए पर्याप्त नहीं है। स्थानीय लोग अपनी समस्याओं को सबसे अच्छी तरह समझते हैं; उन्हें ही यह मालूम होता है कि उन समस्याओं से निपटने के लिये किन साधनों का प्रयोग उपयुक्त एवं संभव है और यह कि किस समस्या का समाधान सबसे पहले होना चाहिए। केन्द्रीय स्तर पर तैयार की गई वरीयता की किसी भी योजना में विविधता भरी स्थितियों की अनदेखी हो ही जाती है। यही कारण हैं कि एक बार फिर से पंचायती राज और आयोजन प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया जाने लगा है।

प्रश्नः आपको तो मालूम ही है कि प्रधानमंत्री जी पिछले कुछ समय से प्रबल रूप से विकेन्द्रीकृत आयोजना पर जोर दे रहे हैं। आयोजन प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण की प्रधानमंत्री जी की अपील को क्रियान्वित करने में पंचायती राज संस्थाएं कैसे भूमिका निभा सकती हैं?

उत्तरः आपको याद होगा, राजीव गांधी जी ने, प्रधानमंत्री बनने के तुरन्त बाद ही, देश के विभिन्न भागों के ग्रामीण इलाकों का दौरा किया था ताकि वे देख सकें कि विकास की क्या स्थिति है और यह जान सकें कि निचले स्तर पर लोग इसके बारे में क्या सोचते हैं। कहा जाता है कि अपने कुछ दौरों के बाद ही उन्होंने कहा कि स्थानीय प्रतिनिधियों अर्थात् पंचायती संस्थाओं के बिना, न तो प्रभावशाली विकास संभव है, और न ही स्थानीय समुदायों की संतुष्टि इसीलिए वे पंचायती राज संस्थाओं की महत्ता पर बल दे रहे हैं जिन्हें सार्थक बनाने के लिए आयोजना प्रक्रिया का हिस्सा बनाना पड़ेगा। अतः आयोजन प्रक्रिया और पंचायती राज संस्थाओं का जिक्र वे बार-बार करते हैं।

प्रश्नः जैन साहब, आप इस बात से सहमत होंगे कि प्रायः विकेन्द्रीकरण का यह गलत अर्थ लगाया जाता है कि राज्यों या प्रान्तों और जिलों को अधिक अधिकार दे दिए जाएं, लेकिन हमारे नीति-निर्माताओं के सामने असली प्रश्न यह है कि विकास की प्रक्रिया में लोगों को कैसे शामिल किया जाए। आपकी राय में पंचायती राज संस्थाएं, इस लक्ष्य की प्राप्ति में किस प्रकार सहायता कर सकती हैं? कृपया यह भी बताइए कि इन संस्थाओं, सरकारी प्रशासनिक तंत्र जैसे जिलाधीश, सहकारी विभाग, डी०आर०डी०ए०, और ग्रामीण विकास में लगी स्वयंसेवी संस्थाओं के बीच क्या संबन्ध संभव हैं?

उत्तरः शुरुआत तो गांवों से लेकर केन्द्र तक की एजेन्सियों के बीच, कार्यपालकों और उत्तरदायित्वों के विभाजन से की जानी चाहिए। मेरे विचार में इसकी व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि जो काम ग्राम या ग्राम-पंचायत कर सकते हैं, उन्हें उच्चतर स्तर की कोई

एजेन्सी अभिकरण न करे। जो काम जिला परिषद अपने क्षेत्र में कर सकती हैं, उसका बोझ राज्य सरकार पर न डाला जाए। इसी प्रकार, राज्य सरकारें अपने सांविधानिक उत्तरदायित्वों के संबंध में जो कुछ कर सकती हैं, उसके लिए केन्द्रीय सरकार पर भार न डाला जाए। यदि इस सिद्धांत का पालन किया जाए, तो एक सुसंगत-समरूप योजना बनाने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

हम सिर्फ विकेन्द्रीकरण की बात नहीं कर रहे हैं, अपितु एक ऐसी तार्किक योजना की बात कर रहे हैं, जिसके अंतर्गत, बाहरी एजेंसियों पर अकारण निर्भरता के बिना, प्रत्येक छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी इकाई अधिकतम कार्य कर सकें। अतः प्रश्न यह निश्चित करने का है कि कौन-कौन से काम पंचायती राज संस्थाओं के लिए उपयुक्त रहेंगे जिनको वे सुचारू रूप से कर सकें; पिछले अनुभवों के आधार पर, वे कौन-कौन से क्षेत्र हैं, जहां ये संस्थाएं केन्द्र एवं राज्य सरकारों से बेहतर व अधिक प्रभावशाली तरीके से काम कर सकती हैं। सारे देश में स्थिति एक जैसी नहीं हो सकती और लगभग सभी यह मानते हैं कि भूमि, जल, वन, चरागाह जैसे साधनों के उपयुक्त प्रबंध के लिये स्थानीय स्तर पर आयोजना की आवश्यकता है।

दूसरा महत्वपूर्ण कार्य भूमि के कुशल उपयोग के कार्यक्रम से संबंधित है ताकि जहां तक हो सके, भोजन, चारा और इंधन स्थानीय रूप से उपलब्ध हो सके।

तीसरे कार्य का संबंध शिक्षा, प्राथमिक चिकित्सा सुविधा, पेयजल, ग्रामीण सड़कों और सार्वजनिक वितरण जैसी बुनियादी जरूरतों से है। यहां भी, अनुभव से पता चलता है कि जहां भी प्राथमिक पाठशालाएं पंचायतों की देखरेख और नियंत्रण में चल रही हैं, वहां अध्यापकों की उपस्थिति में अत्यन्त सुधार हुआ है। अन्यथा, जैसा कि शिक्षा मन्त्रालय के 'शिक्षा की चुनौतियां' नामक प्रलेख से पता चलता है, ऐसे मामले भी हैं, जहां अध्यापक विद्यालयों में जाए बिना ही वेतन लिए जा रहे हैं, या कि उन्होंने अपना काम कम पैसों में किसी और को बेच दिया। इसी प्रकार से, जो स्वास्थ्य केन्द्र स्थानीय पंचायतों के अधीन चल रहे हैं, उनमें स्वास्थ्य कर्मचारियों की उपस्थिति में भारी सुधार हुआ है। कारण सीधा-साधा है। स्वास्थ्य दांव पर होता है, वे जोर डालते हैं कि संबंधित अधिकारी अपनी-अपनी जगहों पर उपस्थित रहें। ऊपर से निर्देशित और नियंत्रित केन्द्रित व्यवस्था में, ये अधिकारी एवं कर्मचारी अपना पूर्ण योगदान नहीं दे रहे हैं।

प्रश्न: यदि आयोजना प्रक्रिया को पूर्ण समन्वित मान लिया जाय, तो विभिन्न खंडों अर्थात् पंचायतों, जिलों, राज्य सरकारों और योजना आयोग के बीच क्या संयोजन हो सकते हैं?

उत्तर: पहले तो मैं साफ-साफ बता दूं कि यह मानना केवल आदर्शवाद है कि हमारी वर्तमान आयोजना प्रक्रिया एक समन्वित प्रक्रिया है। कारण सरल है। हमारी आयोजना का घोषित उद्देश्य गरीबी और बेरोजगारी हटाना है, लेकिन इन समस्याओं से जूझा जा रहा है — योजना के बाहर — समन्वित ग्रामीण विकास जैसे गरीबी उन्मूलन के विशेष कार्यक्रमों के माध्यम से। आयोजना की थोड़ी सी भी समझ रखने वाला व्यक्ति जानता है कि इन विशेष कार्यक्रमों पर, योजना के अन्तर्गत अधिकतम निवेश भी किया जाए, तो भी इन कार्यक्रमों को अगले हजार सालों तक चलाना पड़ेगा। दूसरे तकनीकी स्तर पर, यह सर्वविदित है कि हमारी आयोजना आवश्यक रूप से 'खण्डात्मक' है अर्थात् राज्य सरकार का प्रत्येक विभाग और केन्द्र का प्रत्येक मन्त्रालय अपने विषयों तक सीमित कार्यकलापों और निवेश की योजना तैयार करते हैं। राज्यों के विभागों की योजनाओं को जोड़ कर राज्य की योजना बन जाती है। केन्द्रीय स्तर पर, राज्यों की योजनाओं और केन्द्र के विभिन्न मन्त्रालयों को जोड़ कर राष्ट्रीय योजना बन जाती है। लेकिन यदि आपको एक समन्वित योजना चाहिए तो आयोजना प्रक्रिया से बहुत अपेक्षाएं हो जाती हैं।

अब मैं सीधे, समन्वित योजना तैयार करने के उस तरीके पर आता हूं, जिसकी रूपरेखा दूसरी पंचवर्षीय योजना में तैयार की गई थी। अन्य कोई भी योजना इससे आगे नहीं बढ़ पाई है। पहली पंचवर्षीय योजना के अनुभव के आधार पर, दूसरी योजना में बताया गया कि जब ग्राम स्तर से योजना की तैयारी आरम्भ होगी, तब प्रत्येक गांव उत्पादन और ग्रामीण स्तर पर आवश्यक सेवाओं की एक योजना तैयार करेगा। गांवों की योजनाओं को सुसंगत रूप से ब्लॉक की

योजनाओं में शामिल किया जाएगा और इसी प्रकार ब्लॉक की योजनाओं को जिले की योजनाओं में, जिले स्तर की योजनाओं को राज्य की योजनाओं में और राज्य स्तर की योजनाओं को केन्द्रीय स्तर की योजनाओं में। दुख की बात है कि इस प्रक्रिया को अभी तक क्रियान्वित नहीं किया गया। कारण सरल है। जब तक ऐसी स्थानीय संस्थाएं नहीं होंगी जो स्थानीय एवं ब्लॉक स्तर पर योजनाएं बना सकें, तब तक समन्वित योजना तैयार नहीं की जा सकती। अतः मैं उन लोगों में से हूं जिनका विश्वास है कि पंचायती राज संस्थाओं को आरम्भ किए जाने के बाद, हमें देश में समन्वित योजना के लिए संस्थागत अवलंबन मिल जाएगा। इन संस्थाओं के कारण समन्वित आयोजना की तैयारी में कोई बाधा नहीं पड़ेगी, जैसा कि कुछ लोगों को डर है; अपितु इससे समन्वित आयोजना में तीव्रता आयेगी।

श्न: क्या पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत बनाना और प्रौद्योगिकी मिशन का विचार साथ-साथ चल सकते हैं?

त्तर: पहली बात तो यह है कि प्रौद्योगिकी मिशन समाज की प्रकृति, संस्थाओं, उनकी शक्तियों और दुर्बलताओं, उनकी कमियों और उनके कार्यकलापों के संबंध में प्रौद्योगिकी निवेश का अध्ययन करते हैं; और उनको मजबूत बनाने के लिए रणनीति तैयार करते हैं। यह समझना गलत है कि प्रौद्योगिकी-मिशन ऊपर-से-नीचे की ओर एक कार्यकलाप है। इसको ऐसा होने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए, कर्नाटक विज्ञान एवं तकनीकी परिषद ने प्रत्येक जिले की विज्ञान एवं तकनीकी निवेश की आवश्यकताओं का पता लगाने के लिए, जिला परिषद स्तर पर अपनी शाखायें खोलने का प्रस्ताव रखा है। इसके बाद यह परिषद उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए योजनाए बनाएगी। एक अफसरशाही दिमाग ही यह सोच सकता है कि प्रौद्योगिकी मिशन एक प्रशासनिक विभाग की तरह है, जो वास्तविकताओं से दूर जा सकता है। बल्कि, स्थानीय आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करने वाली पंचायती राज संस्थाओं के प्रादुर्भाव से प्रौद्योगिकी मिशनों से अपेक्षाओं में कई गुणा वृद्धि हो जाएगी।

प्रश्न: कई क्षेत्रों में यह अनुभव किया जा रहा है कि विकेन्द्रीकृत आयोजना और विकेन्द्रीकरण लाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं के प्रयोग के बारे में बात करना आसान है, लेकिन अपने सीमित साधनों के कारण, पंचायती संस्थाओं के लिए क्या यह संभव है कि वे संबंधित क्षेत्र के उपलब्ध साधनों और आवश्यकताओं के अनुरूप विकेन्द्रीकरण कर सकें। यदि इस प्रकार योजना बन भी जाए, तो कौन सी एजेंसियां इसको कार्यान्वित करेंगी? क्या आपको लगता है कि ऐसी योजना के लिए पंचायत स्तर पर पर्याप्त बौद्धिक साधन हैं? ऐसी योजनाओं के प्रतिपादन के लिए, कौन से व्यवसायी व्यावसायिक-आधार प्रदान करेंगे? भारतीय आर्थिक सेवा की इसमें क्या भूमिका हो सकती है? आपकी राय में, पंचायती राज संस्थाओं को किस प्रकार आर्थिक रूप से अधिक व्यवहार्य बनाया जा सकता है?

उत्तर: जब हम पिछले अनुभव की बात करते हैं तो यह याद रखा जाना चाहिए कि हालांकि पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना हो गई, मगर वे 'खाली बक्से' ही रहीं। कार्यों, अधिकारियों या बढ़े हुए उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए आवश्यक धन का कोई स्थानान्तरण नहीं हुआ। यदि किसी हवाईजहाज को अपने गंतव्य तक पहुंचने के लिए जितना ईंधन चाहिए, उससे आधा ही प्रदान किया जाए, तो वह आधे रास्ते में ही गिर पड़ेगा। पंचायती राज संस्थाओं के साथ भी यही हुआ। सौभाग्य से, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक और गुजरात जैसे कई राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को कार्य, कोष और कार्यकर्ता सौंप कर सार्थक बनाने की कोशिश की गई है। इसलिए ऐसे प्रदेशों से पंचायती राज के बारे में सफलता की कहानियां सुनाई देती हैं। इन संस्थाओं में कोई कमी नहीं है, कमी तो हमारे व्यवहार में है कि हमने इनके उत्तरदायित्वों के अनुरूप जनशक्ति एवं आर्थिक साधन उपलब्ध नहीं कराए।

आज हमारे पास अर्थशास्त्रियों का एक व्यवसायी संवर्ग है, जिसको हम भारतीय आर्थिक सेवा कहते हैं। दुर्भाग्य से इस व्यवसायिक सेवा का प्रयोग सचिवालयों में और लिपकीय कार्य के लिए ही किया जा रहा है। यदि मुझे पिछले चालीस सालों में किसी

गांव, ब्लॉक या जिला मुख्यालय में, इस सेवा का कोई सदस्य नहीं दिखा तो आश्चर्य ही क्या? अतः आवश्यक है कि विकेन्द्रीकृत आयोजना पर जोर देने के साथ-साथ, आर्थिक और तकनीकी निपुणता को भी, कम-से-कम जिला स्तर पर उपलब्ध कराया जाए। बेशक कुछ राज्यों ने जिला योजना इकाइयों की व्यवस्था की है। लेकिन हम उपलब्ध कराई गई जनशक्ति की ओर ध्यान दें तो पता चलता है कि जिला स्तर की आयोजना को गंभीर रूप से नहीं लिया गया है। प्रायः नए पदों पर उन लोगों को लगया गया, जिन्हें कोई न कोई पदोन्नति दी जानी थी, लेकिन उस क्षेत्र की आर्थिक संभावनाओं की उन्नति को ध्यान में नहीं रखा गया। वास्तव में होना यह चाहिए था कि सभी गैर सरकारी संस्थाओं (पिछले 30 वर्षों में हमारे यहां ऐसी बहुत सी संस्थाऐं बनी हैं) का तंत्र प्रत्येक जिले और प्रत्येक राज्य में बुना जाए और विशेषज्ञता के स्वभाव के अनुरूप यह तंत्र स्थानीय संस्थाओं को उपलब्ध कराया जाए। इस दिशा में यह आवश्यक है कि शैक्षिक, तकनीकी और सामाजिक संस्थाओं की भी सहायता ली जाए। जहां संभव हो वहां स्वयंसेवी संगठनों की मदद ली जाए, जो निर्वाचित प्रतिनिधियों की सहायता, सहयोग एवं सहकारिता के आधार पर करते हैं, न कि विभागीय पदाधिकारियों की तरह।

आजकल देश में इस मुद्दे पर भी बहस चल रही है कि जिला स्तर के प्रशासन को, जोकि पिछले सौ वर्षों से जिलाधिकारी के अधीन रहा है, पुनर्गठित किया जाए। जिला स्तर के विभिन्न विभागों के स्वायत्त अधिकारियों की, जोकि जिला कलैक्टर के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य नहीं करते, आपसी टकराहटों से जिला-प्रशासन का इतिहास भरा है। एक जिलाधीश ने हाल ही में मुझे बताया कि उसकी हालत एक ऐसी टीम के कप्तान की सी है, जिसका प्रत्येक खिलाड़ी अपने आपको कप्तान समझता है। दूसरी योजना के बाद, सभी योजना प्रपत्रों में इस बात के लिए दुख प्रकट किया गया है कि जिला स्तर के अधिकारियों के बीच किसी तालमेल के न होने के कारण ही बाधायें उत्पन्न होती हैं, और इसी का परिणाम है कि हमारे निवेशों और प्रयासों के वांछनीय परिणाम नहीं निकल पाए।

आज तथ्य यह है कि कानून और व्यवस्था की जिम्मेदारियां बहुत बढ़ गई हैं और हमारी विकास की गतिविधियां संतोषजनक ढंग से नहीं बढ़ पा रही हैं। ऐसे में यह बुद्धिमत्ता नहीं होगी कि एक ही व्यक्ति के कंधों पर कानून-व्यवस्था और विकास का उत्तरदायित्व डाल दिया जाए। किसी भी दशा में यदि हम स्थानीय विकास कार्यों के लिए निर्वाचित संस्थाएं ला रहे हों, तो उनके पास मुख्य-कार्यकारी स्तर का एक ऐसा अधिकारी होना चाहिए जो उनके निर्देशानुसार कार्य करे। वर्तमान परिस्थितियों में जिलाधिकारी, जिसे कानून व व्यवस्था सहित कई विधि एवं न्याय संबंधी उत्तरदायित्व निभाने होते हैं, ऐसा अधिकारी नहीं हो सकता। अतः सबसे पहले विकास और कानून एवं व्यवस्था के कार्यों को अलग-अलग करना होगा। दूसरे, सभी संबंधित तकनीकी विशेषज्ञों को उन स्थानीय निकायों का हिस्सा बनना पड़ेगा जो इनके मुख्य-कार्यकारी अधिकारी के अधीन आते हैं। इससे उन विशेषज्ञों को काम की संतुष्टि भी मिलेगी जिनकी यह शिकायत रहती है कि जिन प्रशासकों के अधीन वे कार्य करते हैं वे केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने में लगे रहते हैं और इन्हें अपने विशिष्ट क्षेत्रों में योगदान का अवसर नहीं मिल पाता। यहां तक कि जिला स्तर पर जो थोड़े बहुत आयोजना संबंधी और सांख्यिकीय साधन उपलब्ध हैं, वे भी प्रशासनिक एवं लिपिकीय कार्यों में लग जाते हैं। जब इन विशेषज्ञों को अपने क्षेत्रों में योगदान करने का अवसर नहीं मिलता तो उनके ज्ञान और प्रेरणा का हरास होने लगता है। विकास के लिए अपने जन एवं भौतक संसाधनों के पूर्ण प्रयोग के संबंध में यह आदर्श स्थिति नहीं है।

प्रश्नः समाज के कुछ क्षेत्रों में, यह महसूस किया जा रहा है कि पंचायती राज संस्थाओं को अधिक शक्तियां प्रदान करने से, इनके नेताओं के हाथों में आर्थिक और राजनैतिक शक्ति केन्द्रित हो जाएगी। इसकी संभावना अधिक इसलिए भी है क्योंकि सामान्यतः पंचायती राज का नेतृत्व, ग्रामीण समाज के प्रभावशाली वर्ग के पास है। इस परिप्रेक्ष्य में, आपको नहीं लगता कि पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार सौंप देने से यही वर्ग अधिक मजबूत होगा

और जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग की आवश्यकताएं और आशायें हतोत्साहित होंगी।

उत्तर: कई विचारशील लोगों की यह चिन्ता समझ में आती है कि पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देने से ग्रामीण समाज के पहले से ही प्रभावशाली तुत्व और अधिक मजबूत होंगे। इससे असमानताएं बढ़ेंगी, यह चिन्ता भी उचित है। लेकिन यह याद रखा जाना चाहिए कि ये शक्तिशाली तत्व, पिछले चालीस सालों से ग्रामीण दृश्य पर छाए हुए हैं चुनावों का सामना करना पड़ेगा। जिसका अर्थ है कि उन्हें परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा, जिसकी वर्तमान स्थिति में कोई संभावना नहीं दीखती। इस तथ्य की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अंत्योदय और समन्वित ग्रामीण विकास जैसे गरीबी उन्मूलन के विशेष कार्यक्रमों के अंतर्गत अपात्र परिवारों को अर्थात उन परिवारों को जो पहले ही गरीबी रेखा के ऊपर रह रहे थे, साधनों का बड़ा हिस्सा उपलब्ध हो गया। इसका अर्थ है कि शक्तिशाली तत्वों को सरकारी तंत्र द्वारा, सरकारी अनुदान प्रदान किया गया। इसका अर्थ यह भी है कि असमानतांए बढ़ाई गई हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि पंचायती राज संस्थाऐं कोई रामबाण नहीं हैं, लेकिन ऐसी स्थिति में जब हम शक्ति के किसी वैकल्पिक ढांचे को नहीं बना पाए हैं, हमें गरीबों को चुनावी मंच से अर्थात पंचायतों के नियतकालिक चुनावों द्वारा अपनी लड़ाई खुद लड़ने का मौका देना चाहिए। विकेन्द्रीकृत आयोजना और पंचायती राज संस्थाओं से सबसे बड़ा परिवर्तन यह होगा कि हम वित्तीय-आयोजना की वर्तमान स्थिति से परे हटेंगे। हमारे यहां विशाल प्राकृतिक एवं जनससाधन हैं। सौभाग्य से वैज्ञानिक संसाधनों में भी दिन प्रति वृद्धि हो रही है। अंतरिक्ष विकास कार्यक्रम के माध्यम से उपलब्ध अद्भुत मानचित्रों और आँकड़ों से यह साबित हो जाता है। इस कार्यक्रम के जरिए स्थानीय संस्थाऐं हमारे प्राकृतिक साधनों के प्रयोग की प्रभावी योजना बना सकती हैं। यदि प्राकृतिक संसाधनों का सही प्रयोग हो तो विकास के लिए अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध होंगे।

अंत में, मेरी पीढ़ी का व्यक्ति स्वतंत्रता आंदोलन के विचारणीय विषयों को नहीं भूल सकता। आज हम विकेन्द्रीकरण और पंचायती राज की अच्छाइयों और बुराइयों के बारे में बातें कर रहे हैं, जबकि गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन का लक्ष्य ही बन गया था कि अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद भारत के राजनैतिक ढाँचे को पुनर्गठित किया जाए — निचले स्तर से ऊपर की ओर। यदि आज हम पंचायती राज संस्थाओं को स्थापित करने की बात करते हैं तो यह उस वचन की ही पूर्ति मात्र है। हमें याद रखना चाहिए कि आजादी के बाद, राज्य और केन्द्रीय सरकारों के गुणों के बारे में कोई बहस नहीं हुई। जब प्रश्न उठे कि लोगों को केन्द्र बनाए बिना प्रजातांत्रिक ढाँचे में देश नहीं चल सकता, तो इनको स्थापित कर दिया गया। संवैधानिक सभा ने राज्य के निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 40 को शामिल कर लिया जिसके अनुसार स्वशासन की पंचायती राज इकाइयां यथाशीघ्र स्थापित की जाएंगी। पिछले चालीस वर्षों में, हम स्वतंत्रता आंदोलन के उस वचन का और संविधान के निर्देश का पालन करने में असफल रहे हैं। अतः उन सब लोगों को पूर्ण समर्थन दिया जाना चाहिए जो अब पंचायती राज संस्थाओं को स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रश्न: निकट भविष्य में, हमारी आयोजना प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण में पंचायती राज संस्थाओं के सहयोग की क्या संभावनाएं आप देखते हैं?

उत्तर: देश का भविष्य ही इस बात पर निर्भर है कि हम कितनी शीघ्रता से, देश के प्रत्येक हिस्से में पंचायती राज संस्थाओं को स्थापित करते हैं। जैसा कि ऊपर हुआ वार्तालाप दर्शाता है, इन संस्थाओं की स्थापना से ही हमारी आयोजना प्रक्रिया में प्राण एवं तीव्रता आयेगी इसी से, गरीबी और असमानता दूर करने के लिए देश के संसाधनों का प्रभावी प्रयोग सुनिश्चित किया जा सकेगा और हम 1947 में गांधीजी के नेतृत्व में मिली राजनैतिक स्वतंत्रता के वास्तविक सुपात्र बनेंगे।

अनुवाद:
एस.सी. सक्सैना
जी-212, प्रीत विहार,
दिल्ली-110092

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भूमिका

निर्मला देशपांडे

निर्मला देशपांडे छोटी उम्र में ही स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़ी थीं। वे विनोबा भावे और गांधीजी के निकट सम्पर्क में रहीं। उन्होंने इन दोनों नेताओं के आदर्शों और दर्शन के अनुसार काम किया।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद वे निर्धनों और दलितों विशेषरूप से हरिजनों के उद्धार के काम में लगी हुई हैं। वे हरिजन सेवक संघ, अखिल भारत रचनात्मक समाज, केंद्रीय ग्राम विकास केंद्र और विनोबा आश्रम ट्रस्ट की अध्यक्षा हैं। वे मराठी और हिंदी के साहित्यिक जगत से भी जुड़ी हैं। उन्होंने इन दोनों भाषाओं में उपन्यास और नाटक आदि लिखे हैं। इस समय वे दिल्ली से प्रकाशित हिंदी पाक्षिक का संपादन कर रही हैं जिसके तमिल और मराठी संस्करण भी निकलते हैं।

प्रसा. डी. वर्मा और कल्याण रमन ने इस वयोवृद्ध सामाजिक कार्यकर्मी से भेंट की। प्रस्तुत हैं उनके विचार।

जैसा कि आप जानते हैं महिलाओं ने, विशेषकर गांधीजी के नेतृत्व में भारत के स्वतंत्रता संग्राम में, बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस संग्राम में सभी क्षेत्रों की महिलाओं ने आगे बढ़ कर हिस्सा लिया। एक अमरीकी पत्रकार विशेषरूप से दांडी मार्च देखने के लिए भारत आया था। इस में महिलाओं के हिस्सा लेने को देखकर यह पत्रकार कह उठा था "भले ही गांधी जी स्वाधीनता न प्राप्त कर सकें, उन्होंने महिलाओं को मुक्ति दिलाकर और उन्हें राष्ट्र के जीवन में कारगर ढंग से भाग लेने के लिए प्रेरित कर, एक चमत्कार तो कर ही दिखाया है"। सच तो यह है कि हमारे स्वाधीनता आंदोलन और विशेषरूप से गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा-आंदोलन ने महिलाओं को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे की पंक्ति में ला खड़ा किया। मैं यह कहना चाहूंगी कि हमारी सोच, पाश्चात्य सोच से अलग है। हमारा दृष्टिकोण रचनात्मक और ठोस है। यह पुरुषों के विरुद्ध नहीं है। उन्हें यह दृढ़तापूर्वक एहसास कराना है कि उन में क्षमता है, ताकत है, हर काम करने की। वे देश का भाग्य बनाने में प्रभावकारी भूमिका निभा सकती हैं। इस रवैये का अलग होना स्वाभाविक है और यह हमारी मूल्यवान विरासत है, भले ही कोई हमारे देश को पिछड़ा हुआ कहे। वोट डालने का अधिकार प्राप्त हुआ। गांधीजी कहा करते थे 'पहले काबिल बनो, फिर कामना करो' भारत में महिलाओं को मतदान का अधिकार इसलिए मिला कि वे इसके योग्य हो गई थीं। राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ कर हिस्सा लिया और उन्होंने बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान किया है। आज महिलाएं विधायक, सांसद तथा राज्यपाल ही नहीं हैं वे मुख्यमंत्री और यहां तक कि प्रधानमंत्री की जिम्मेदारी भी बखूबी निभा सकती हैं।

सचाई तो यह है कि अन्य देशों की तुलना में भारतीय महिलाओं की भागीदारी गुणात्मक और परिणामात्मक दोनों दृष्टियों से ऊंची रही हैं। जब इंदिराजी प्रधानमंत्री बनी थीं तो एक पाश्चात्य पत्रकार ने उन से पूछा था: महिला के नाते प्रधानमंत्री पद पर काम करते हुए आप को कैसा लग रहा है? जवाब में इंदिराजी ने कहा 'मुझे नहीं लगता कि मैं कोई महिला हूं, हां मैं एक मानव जरूर हूं। यही है वह मानसिकता, जिसे विकसित करने की आवश्यकता है।

गांधीवादी आंदोलन के कारण भारत में महिलाएं अपनी

बेड़ियां-बंधन तोड़कर सामने आ सकीं। आज़ादी मिलने के बाद कुछ वर्षों तक स्वतंत्रता-आंदोलन का प्रभाव कायम रहा लेकिन उसके बाद धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। चुनाव-प्रणाली में संख्या का महत्व बढ़ गया। अब गुण का महत्व कम और गण का महत्व अधिक हो गया है। तो भी अगर ठंडे दिमाग से सारी स्थिति पर विचार किया जाए तो कह सकते हैं कि भारत की महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में विश्व के अन्य किसी भी देश की महिलाओं से कहीं आगे हैं।

पंचायत-प्रणाली में ग्रामराज और ग्राम स्वराज के बारे में भारत की अवधारणा, पश्चिम की संकल्पना से अलग हैं। असल में हमारा सारा चिंतन ही अलग रहा है। तो भी हम ने पश्चिम की पद्धति को भारतीय परिवेश में लागू करने की कोशिश की है। इसी वजह से कुछ अंतर्विरोधी हैं। हम पंच परमेश्वर में विश्वास करते हैं जिसके अनुसार पांच व्यक्ति मिल बैठकर आम सहमति से निर्णय करते हैं। पहले आम सहमति का बहुत महत्व था। लेकिन आज के ढांचे में इसका अभाव है। अगर हम वर्तमान पंचायती प्रणाली में आम सहमति का सिद्धांत लागू कर सकें तो इस से सहायता मिलेगी। हमारे समाज के जातपात के आधार पर बंटे होने के कारण उसे एक सूत्र में बांधने की तत्काल आवश्यकता है। लेकिन वर्तमान चुनाव-प्रणाली जातपात की भावना को बढ़ाकर समाज को और विभाजित करती है। ज़रूरत ऐसी प्रणाली की है जो लोगों में एकता पैदा करे। निर्णय करने की पंच परमेश्वर की भारतीय पद्धति एक आदर्श पद्धति है क्योंकि ये पंच, लोगों की समस्याओं को सबसे अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए चुनाव पद्धति में कुछ न कुछ परिवर्तन तो किया ही जाना चाहिए।

जहां तक विकास का प्रश्न है, हाल ही में प्रधानमंत्री ने कहा है कि गरीबों के लिए निर्धारित साधनों को पांचवा भाग ही उन्हें मिल पाता है बाकी का लाभ उन्हें नहीं मिल पाता। गांवों में गरीबों के लिए नियत सहायता पूरी की पूरी उन्हें नहीं मिल पाती। अगर हम ग्राम समुदाय को विकास के लिए जिम्मेदार ठहरा दें तो इस से बहुत मदद मिलेगी। समूची विकास प्रक्रिया में आमूल बदलाव की आवश्यकता है। अपने साधनों का प्रबन्ध लोगों को ही सौंपा जाना चाहिए। जब एक पत्रकार ने गांधीजी से पूछा कि आप स्वराज किसे मानते हैं, स्वराज की परिभाषा क्या है? तो गांधीजी ने कहा: "स्वराज का मतलब गलतियां करने का अधिकार है। हमें अपनी गलतियों से कुछ सीखना-समझना चाहिए। अगर गांवों के लोग गलतियां करते हैं तो करने दो। इस प्रक्रिया में वे कुछ सीखेंगे ही। उन्हें अपना काम स्वयं करने का अधिकार दिया जाना चाहिए। वर्तमान व्यवस्था में उन्हें छोटी-छोटी बातों के लिए राजधानी जाना पड़ता है।"

अगर पंचायती राज को भागीदारी का तथा लोकतंत्र को नीचे के तबकों तक ले जाने का माध्यम बनाना है तो पंचायतों को ज़्यादा अधिकार, ज़्यादा स्वायत्तता और ज़्यादा साधन देने पड़ेंगे। इस काम में समय लग सकता है, लेकिन अंत में विकेन्द्रीकरण से ही लोकतंत्र सार्थक बन पायेगा।

पंचायती राज प्रणाली और इसकी समस्याएं

बहुत से राज्यों में पिछले कई वर्षों से चुनाव नहीं हुए थे। पंचायतों को न तो कोई अधिकार और न कोई साधन ही प्रदान किए गए हैं। ऐसी हालत में कैसे कोई कह सकता है कि यह परीक्षा असफल हुआ है। सच तो यह है कि इसे ठीक से परखा नहीं गया है। मौका देने पर ही इस की परख होगी। विनोबा भावे ने कहा था कि मुगलों के आने पर देश भले ही पराधीन हो गया था, लेकिन गांव स्वतंत्र बने रहे। लेकिन 15 अगस्त 1947 के बाद देश चाहे आजाद हो गया, गांव अभी तक आज़ाद नहीं हुए।

ग्राम स्वाधीनता, ग्राम स्वराज और ग्राम राज अभी आना है। इसी की आज जरूरत है। पंचायती राज इसी दिशा में एक कदम है। अगर पंचायती राज की सफलता के लिए हमें अनुकूल वातावरण बनाना है तो हमें भूमि सुधार भी करने होंगे और उन्हें लागू करना होगा। इनके लिए कानून बनाना ही नहीं, उन्हें मूर्तरूप देना भी आवश्यक है।

पंचायती राज प्रणाली में महिलाओं की भूमिका

मैं तो कहूंगी कि पंचायतों में लोगों ने सामूहिक रूप से कोई खास हिस्सा नहीं लिया। इसका कारण धन-शक्ति और बाहुबल का प्रयोग रहा है। इसके अलावा गांवों में कुछ इने गिने लोगों ने महिलाओं को दबाए रखा है। यही कारण है कि वे खुलकर सामने नहीं आतीं। लेकिन अगर आम सहमति का सिद्धांत मान लिया गया, जिसकी मैंने पहले चर्चा की है, तो

धन्ना सेठों और लट्ठबाजों की नहीं चलेगी तब महिलाएं भी अधिक हिस्सा लेंगी। हमने अपनी संस्थाओं में इस तरीके को आजमाया है।

पंचायती राज प्रणाली में महिलाओं के लिए आरक्षण

मैं आरक्षण को पसंद नहीं करती। इससे कोई समस्या हल नहीं होगी। हम सब बराबर हैं बल्कि यूं कहना चाहिए, इससे कुछ अधिक हैं। यह भी एक पाश्चात्य अवधारणा है। भारतीय संस्कृति में तो महिलाओं की पूजा की जाती थी। महिला किसी से कम या दूसरे दर्जे की नागरिक नहीं हैं। आरक्षण कतई गलत है। यह हमारी संस्कृति के भी अनुरूप नहीं है। साथ ही जब हमने आजादी की लड़ाई लड़ी, अपने प्राणों की आहूति दी, परिवार और यहां तक कि सब कुछ न्योछावर कर दिया, हमने कभी एक दूसरे को स्त्री या पुरुष के रूप में न देखा, न सोचा। आरक्षण का मतलब है कि आप घटकर हैं और आप को किसी न किसी रूप में संरक्षण चाहिए। सच तो यह है कि भारतीय महिलाओं ने कभी भी अपने को किसी से कम नहीं समझा।

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य-योजना में महिलाओं के आरक्षण की सिफारिश की गई है।

मैं भी इस योजना से सम्बद्ध राष्ट्रीय समिति की सदस्या हूं। समिति के सदस्यों ने निस्सन्देह बहुत मेहनत की है, समस्याओं का अध्ययन किया है और बहुत से सुझाव दिए हैं। लेकिन मैं उनकी इस सिफारिस से सहमत नहीं हूं। उनके अन्य सभी सुझाव बहुत अच्छे हैं। पर हमें नर बनाम नारी के रवैये को छोड़ना होगा। हम सब मानव हैं। सभी को मिलकर काम करना है। आरक्षण समस्या के समाधान का एक तरीका है, लेकिन मेरे विचार में उचित तरीका नहीं है।

आप ऐसे क्या उपाय सुझायेंगी, जिनसे महिलाएं राजनीतिक प्रणाली में भाग लेने के लिए आकृष्ट हो सकें?

सामान्य जागृति तथा अपने देश के आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों पर ज़ोर देना होगा। ऐसा वातावरण उत्पन्न करना होगा जिसमें इन मूल्यों को उपयुक्त महत्व प्रदान किया जाए तभी महिलाऐं ऊपर उठ सकेंगी। वैसे भी सामान्य वातावरण को बदलने की ज़रूरत है।

आज की महिलाएं

राजनीतिक अथवा अन्य क्षेत्रों में महिलाएं पुरुषों की नकल नहीं करतीं। उन्हें एक विशेष भूमिका निभानी है। गांधीजी कहा करते थे महिलाएं अहिंसा की प्रतीक हैं। जब दुनिया अहिंसा की तरफ मुड़ेगी, तो महिलाओं का नेता बनना स्वाभाविक है। लेकिन हिंसा में महिलाएं पीछे रह जाती हैं।

जहां तक पंचायतों का प्रश्न है, जब तक भूमि की प्रबन्ध प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं होता, पंचायती राज सफल नहीं हो सकता। अगर पद दलितों को अन्य लोगों के बराबर ला खड़ा नहीं किया जाता, तो वोट का अधिकार बेमानी हो जाता है। खासकर ऐसी स्थिति में जब वोट खरीद लिए जाएं या धौंस-धमकी से बटोर लिए जाएं। गरीबों को बहुत कुछ नहीं चाहिए, लेकिन उनके लिए ज़िंदा रहने लायक कुछ साधन तो जुटाने ही होंगे। हमें देखना होगा कि उनकी अनाज, कपड़े, छत-छप्पर और रोज़गार आदि की बुनियादी ज़रूरतें पूरी हों। पंचायती राज की सफलता के लिए यह परमावश्यक है। वर्तमान जातपात की प्रणाली में कुछ जातों को नीच जातियां समझा जाता है। समाज में इस ऊंच नीच के रहते हुए मतदान के अधिकार से कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं होने वाला। इसलिए राजनीतिक उपायों के साथ-साथ आर्थिक सुधार के काम भी हाथ में लेने होंगे और गरीबों में भी सब से गरीब की हालत सुधारने पर सब से पहले ध्यान देना होगा। पंचायती राज की कामयाबी के लिए बे-जमीनों को ज़मीन देना, बिना छत-छप्पर वालों के लिए छत का जुगाड़ करना तथा बेरोजगारों को रोजगार दिलाना अनिवार्य है।

अनुवादक
वेद प्रकाश अरोड़ा
268 सत्यानिकेतन
मोती बाग, नानकपुरा
नई दिल्ली-110021

प्रज्ञा डी. वर्मा कल्याण की सहायता से

पंचायत और महिलाएं

के.बी. सक्सेना संयुक्त सचिव,
ग्रामीण विकास विभाग, नई दिल्ली

राजनैतिक सहभागिता से अभिप्राय किसी भी संगठित क्रिया-कलाप, सक्रियता से है जो किसी संस्था अथवा शक्ति-संरचना के चरित्र, कार्य, संरचना नीतियों, कार्यभार, कार्य-शैली को प्रभावित या परिवर्तित करता है।

विभिन्न सामाजिक-आर्थिक रुकावटों के कारण महिलाओं को अपनी सांख्यिकी शक्ति के बावजूद समाज में बहुत छोटा दर्जा प्राप्त है। इसने राजनैतिक प्रक्रियाओं को जनतंत्र की संस्थागत संरचना में महिलाओं को प्रभावपूर्ण भागीदारी को रोका है। महिलाओं के विकास के लिए तैयार किए गए दस्तावेज (1985) में स्वीकार किया गया है कि महिलाओं द्वारा अनौपचारिक राजनैतिक क्रियाओं में तीव्र वृद्धि के बावजूद राजनैतिक संरचना में इनकी भूमिका वास्तव में अपरिवर्तित रही है। राजनीति में महिलाओं की विस्तृत भागीदारी जाति, धर्म, जमींदारी एवं पारिवारिक स्थिति जैसे पारंपरिक कारणों की वजह से बहुत ही सीमित है। परिणामस्वरूप महिलाएं अब भी राजनैतिक प्रक्रिया के एक किनारे पर छोड़ दी गई हैं।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी महज प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में राजनैतिक सहभागिता के लिए ही आवश्यक नहीं समझा जाता, वरन् महिलाओं के लिए विकासात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु भी जरूरी माना जाता है, इसके बावजूद, स्वतंत्रता के बाद से इस दिशा में बहुत प्रगति लक्षित नहीं हुई है। आंध्रप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और पंजाब को छोड़कर, जहां ग्रामीण स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं में महिला सदस्य सम्मानजनक संख्या में चुनी गई हैं, दूसरे प्रांतों में उनका प्रतिनिधित्व या तो नहीं रहा है या न के बराबर रहा है। यद्यपि कुछ राज्यों में महिला सदस्यों की नामजदगी करके संतुलन बनाए रखने की कोशिश की गई है। ग्राम स्तर पर पंचायतों में महिलाओं के प्रधान बनने की दिशा में स्थिति और भी तकलीफदेह है। दो राज्यों को छोड़कर चुनी गई महिला सदस्यों की शायद ही कोई उपस्थिति हो। इस स्तर पर अथवा जिला स्तर पर इन संस्थाओं के प्रधान के रूप में, वास्तव में उनका कोई प्रतिनिधित्व ही नहीं है।

भारत में महिलाओं की स्थिति के लिए गठित समिति (1974) ने अपनी रिपोर्ट में ग्राम स्तर पर महिला पंचायत के गठन की सलाह दी है जिसे महिलाओं और बच्चों के विकास कार्यक्रमों के प्रबन्ध और प्रशासन के लिए स्वायत्तता प्राप्त होगी और आय के अपने स्रोत होंगे। यह अधिकांश महिलाओं को अपनी समस्याओं के बारे में स्पष्ट रूप से बोलने और स्थानीय संस्थाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने से रोकने वाले पारंपरिक दृष्टिकोणों में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाएगा। पंचायतों की तरह ये संस्थाएं भी गांव की महिलाओं द्वारा चुनी जा सकती हैं। इन्हें पंचायत समिति और जिला परिषदों में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होना चाहिए। निवर्तमान ग्राम पंचायत और प्रस्तावित महिला पंचायतों के बीच उपयुक्त संबंध सुनिश्चित करने के लिए इन दोनों संस्थाओं के अध्यक्ष तथा सचिव को स्टाफ का पदेन सदस्य होना चाहिए। इन सुझावों की जांच करते समय उप-समिति को आबंटित कोष के साथ पंचायत की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए।

पंचायती राज संस्थाओं हेतु समिति (1978) ने पंचायतों में दो स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित करने का और चुनावों द्वारा उनके न आने की दशा में सभी की पसंद से चयन करने का सुझाव दिया। इसने यह भी सलाह दी कि महिलाओं और बच्चों के विशिष्ट कार्यक्रमों को चलाने के लिए पंचायतों के भीतर महिला समिति गठित की जाए। किन्तु पंचायतों में दो महिला सदस्यों की नामजदगी ने पंचायती राज संस्थाओं में

महिलाओं की भागीदारी ने कोई बोधगम्य प्रभाव नहीं छोड़ा है क्योंकि इसके द्वारा महिला सदस्यों को जनतांत्रिक और राजनैतिक प्रक्रिया में अथवा निर्णय-प्रक्रिया में तथा स्वतंत्र भागीदारी के लिए शायद ही कोई स्थान बचता है।

कृषि मंत्री ने हाल ही में राज्य सरकारों को जारी किए गए एक सर्कुलर में पंचायतों में महिलाओं के प्रभावपूर्ण प्रतिनिधित्व को बढ़ाने हेतु कदम उठाने के लिए कहा है। इसमें कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश के उदाहरण दिए गए हैं जहां क्रमशः 25 प्रतिशत और 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए सुरक्षित रखे गए हैं। बढ़े हुए प्रतिनिधित्व से महिलाओं की अलग-थलग रहने की प्रवृत्ति दूर होगी और राजनैतिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए दृष्टि, ताकत और दृढ़ता प्राप्त होगी।

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिदृश्य योजना (1988) ने बुनियादी स्तर के जनतांत्रिक संस्थाओं में महिलाओं के प्रभावपूर्ण अधिकार के लिए निम्नलिखित कदम सुझाए हैं :—

1. महिलाओं के लिए पंचायत से जिला परिषद के स्तर तक और नगरपालिका में 30 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए जाएं। जहां तक संभव हो, कमजोर वर्गों के दलित आदिवासी महिलाओं का अधिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाए।

2. ग्राम पंचायत से लेकर जिला स्तर तक के सभी संस्थाओं के प्रधान का 30 प्रतिशत और पंचायती राज संस्थाओं के सभी निम्न, मध्यम और उच्च स्तरों पर मुख्य कर्ता-धर्ता का एक निश्चित प्रतिशत महिलाओं के लिए अनिवार्य रूप से आरक्षित किया जाए।

3. निचले स्तर पर पंचायती राज निर्वाचित क्षेत्रों और सभी कार्यकारी पदों का एक निश्चित प्रतिशत महिलाओं के लिए घोषित करके, और उनके लिए निश्चित संख्या में क्षेत्राधिकार आरक्षित करके प्रभावकारी कदम उठाया जा सकता है।

पंचायतों और अन्य कार्यकारी इकाइयों की सभी महिला सदस्यों को अनिवार्य प्रशिक्षण दिया जाए और अपने अधिकार के इस्तेमाल के लिए शक्ति प्रदान की जाए। पुरुष और महिला सदस्य दोनों ही, महिलाओं की समस्या के प्रति संवेदनशील हों। महिलाओं के लिए सामान्य जरूरतों हेतु एक बृहत संचेतन कार्यक्रम चलाया जाए और इसके लिए तैयार किए गए नमूने सामाजिक और आर्थिक अवरोधों को पूरी तरह रूपायित करते हों जो उनकी भागीदारी सीमित करती है अथवा उनके हितों को स्पष्ट करने से रोकती है। इस उद्देश्य के लिए अलग कोष का आबंटन किया जा सकता है। सामुदायिक नेताओं/प्रशिक्षुओं के बीच व्यक्ति के स्तर पर पारस्परिक संवाद कौशल के विकास के लिए विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए चुने गए प्रतिनिधियों और विकास अधिकारियों के मध्य सम्पर्क स्थापन के द्वारा सचेत प्रयत्नों की जरूरत है। निरन्तर सभाओं और बहसों के द्वारा कार्य-योजना तैयार की जानी चाहिए। प्रतिनिधि मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी हों। महिला विकास कार्यक्रम पंचायत/स्थानीय अधिकारियों से भी अनिवार्य रूप से सम्बद्ध हों जिससे कि विकास में महिलाओं की ज्यादा प्रभावपूर्ण भागीदारी संभव हो सके।

यह उल्लेखनीय है कि पंचायती राज संरचना अथवा दूसरी जगहों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व उनके प्रभावपूर्ण राजनैतिक भागीदारी के लिए पर्याप्त शर्त नहीं है तथापि बिना किसी संशय के यह एक अनिवार्य शर्त जरूर है। विभिन्न सामाजिक-आर्थिक दबावों की वजह से, इन जनतांत्रिक इकाइयों की सदस्य अथवा अध्यक्ष होने के बावजूद महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी बुरी तरह अवरुद्ध हो सकती है। अतः यह आवश्यक होगा कि संस्थागत संरचना में महिलाओं के औपचारिक प्रतिनिधित्व को ऐसे अन्य उपायों जो उन्हें पूरी तरह प्रभावित करें, मसलन, जलावन की लकड़ी का विकास और सुरक्षा, पेयजल स्रोत, शिशु-स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रम तथा महिलाओं के सम्मान की रक्षा के द्वारा महिलाओं और पंचायतों को विशिष्ट आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय किया जाए।□

अनुवाद : ऋषिकेश

पश्चिम बंगाल में पंचायतें

प्रोफेसर विप्लव दासगुप्ता

पश्चिम बंगाल में वामपंथी मोर्चा सरकार की दो मुख्य उपलब्धियां हैं - भूमि सुधार और व्यापक पंचायती राज प्रणाली की सफल स्थापना। 1977 से पहले के तीस वर्षों में केवल एक बार 1964 में पंचायतों के चुनाव हुए थे, जबकि उसके बाद 1978, 1983 और 1988 में चुनाव कराए गए और 70 प्रतिशत तक लोगों ने मतदान में भाग लिया। 1977 से पहले पंचायतों के लिए राशि भी बहुत कम निर्धारित की जाती थी और उनके अधिकार भी सीमित थे। किन्तु अब नौकरशाही का महत्त्व निर्वाचित प्रतिनिधियों के मुकाबले काफी घट गया है। इस वर्ष राज्य की लगभग 40 प्रतिशत बजट राशि पंचायतों के माध्यम से खर्च की जा रही है। अगले वित्त वर्ष में 50 प्रतिशत राशि पंचायतें खर्च करेंगी।

राज्य में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम भी पंचायतों के माध्यम से लागू किया जा रहा है। योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन ने हाल में इस कार्यक्रम की समीक्षा में इस बात पर संतोष प्रकट किया कि पश्चिम बंगाल में जो परियोजनाएं चलाई जा रही हैं, वे लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप हैं और यह पंचायतों के योगदान से ही संभव हुआ है। सच तो यह है कि ग्रामीण विकास के सभी कार्यक्रमों और भूमि सुधारों में पंचायतों ने सक्रिय और उपयोगी भूमिका निभाई है।

यह प्रश्न किया जाता है कि मार्क्सवादियों ने इस गांधीवादी कार्यक्रम को इतनी गंभीरता से क्यों अपना लिया है? इसका उत्तर यह है कि निर्णय करने की विकेन्द्रीकृत प्रक्रिया और ग्रामीण विकास में आम लोगों की सहभागिता की धारणा मूलतः गांधीवादी सिद्धांत नहीं है यद्यपि गांधीजी ने इस सिद्धांत को भारतीय संदर्भों में लोकप्रिय बनाने में निश्चय ही अग्रणी भूमिका अदा की। वैसे ग्रामीण विकास के प्रति गांधीवादी तथा मार्क्सवादी दृष्टिकोण में भिन्नताएं भी हैं। उदाहरण के लिए गांधीजी मूलतः नगर तथा औद्योगीकरण के विरोधी थे, जबकि मार्क्सवाद में ऐसी धारणा को मान्यता नहीं मिली है। इसके अलावा मार्क्सवाद गांवों में वर्ग भेद को मान्यता देता है और स्पष्ट रूप से गरीब का पक्ष लेता है। किन्तु गांवों को आत्मनिर्भर बनाने, नौकरशाही में अविश्वास एवं निर्णय प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता के मामले में दोनों दर्शनों का एक जैसा दृष्टिकोण है।

पंचायती राज व्यवस्था को गंभीरता से लागू करने का एक कारण यह भी था कि वामपंथी मोर्चा यह महसूस करता था कि सरकारी अधिकारी, ग्रामीण धनी वर्ग के साथ अपने सम्बंधों के कारण जन कल्याण कार्यक्रमों में पूरी रुचि नहीं लेंगे। पंचायतों के माध्यम से लोगों की भावनाओं का पता लगाना तथा नौकरशाही पर प्रगतिशील उपायों को लागू करने के लिए दबाव डालना संभव हो गया। यह सोचा गया कि ऊपर से मंत्रियों के और नीचे से पंचायतों के दबाव के फलस्वरूप भूमि सुधारों तथा अन्य विकास कार्यों का क्रियान्वयन जल्दी हो सकेगा।

परन्तु पंचायतों को अधिकार सौंप देना ही पर्याप्त नहीं था। यह परिवर्तन तभी सार्थक हो सकता था जब पंचायतों का स्वरूप भी बदल कर उन्हें गरीब समर्थक बनाया जाता। राष्ट्रीय स्तर की अनेक समितियों ने पंचायतों में धनीवर्ग पोषक दृष्टिकोण की ओर संकेत करते हुए कहा है कि ऐसी पंचायतों को गरीबों के हितों के कार्यक्रम चलाने के लिए बहुत अधिक अधिकार देना व्यर्थ है। इसलिए जमींदारों, व्यापारियों, वकीलों तथा अन्य गैर-कृषि वर्गों के लोगों के वर्चस्व से पंचायतों को मुक्त करना आवश्यक था। 1978 में पहले पंचायती चुनावों में ही यह लक्ष्य पूर्ण हो गया और पंचायतों के स्वरूप में आमूल परिवर्तन हो गया। 70 प्रतिशत सदस्य निर्धन वर्गों के चुने गए। अगले दो चुनावों में भी पंचायतों का स्वरूप इसी प्रकार का बना रहा।

1978 में राज्य में आई भीषण बाढ़ का पंचायती प्रणाली की जड़ें जमाने में नाटकीय योगदान रहा। पंचायतों के लिए चुने गए लोगों ने जिनमें अधिकतर पार्टी कार्यकर्ता थे, अभी अपने नए दायित्व को अच्छी तरह समझा ही नहीं था कि उनके सर पर यह विपदा आ गई। सड़क और संचार संपर्क भंग हो जाने के कारण बाढ़ पीड़ित लोगों की सहायता और बचाव के सम्बंध में ऊपर के लोगों से परामर्श आदि करना भी संभव नहीं था। अनुभवहीन होने के बावजूद जनहितकारी दृष्टिकोण तथा अपने प्रति लोगों के विश्वास के बल पर पंचायतों के सदस्यों ने अपनी पहल पर सहायता और बचाव कार्य चलाए। बाद में राज्य सरकार से मिली सहायता भी लोगों तक पंचायतों के माध्यम से पहुंचाई गई। इस प्रयास का परिणाम भी अभूतपूर्व रहा। राज्य में और संभवतः देश में यह पहला मौका था कि इतनी बड़ी विपदा के बावजूद गांवों से शहरों की ओर पलायन नहीं हुआ। एक भी व्यक्ति ने गांव को छोड़कर कलकत्ता के फुटपाथों की शरण नहीं ली। इसके बाद 1982 के सूखे और 1987 की बाढ़ में भी यही हुआ। लोगों ने गांव नहीं छोड़े क्योंकि उन्हें भरोसा था कि वे कहीं भी हो, सहायता उन तक पहुंच ही जाएगी।

पंचायती नेता विभिन्न प्रकार के काम करते हैं, जिनमें मुख्य पांच कार्य ये हैं :—

1) परियोजना के स्थानों का निर्णय : अब स्कूल, सड़कें, गोदाम या सिंचाई-सुविधाओं के लिए स्थानों के बारे में फैसले पंचायतें ही विस्तृत विचार-विमर्श के बाद करती हैं। इनमें कभी-कभी गर्मा-गर्म बहस भी हो जाती है क्योंकि स्थान के बारे में अलग-अलग दावों पर विचार करना होता है। अब नौकरशाही द्वारा धनी वर्ग के प्रभाव में आकर फैसले करने की प्रथा समाप्त हो गई है।

2) लाभार्थियों का चयन : इसके लिए भी खूब विचार-विमर्श और बहस होती है, किन्तु अब खण्ड विकास अधिकारी की इच्छा नहीं, बल्कि आम जनता का दबाव काम करता है और निर्णय वास्तविक जरूरतमंद लोगों के पक्ष में होते हैं।

3) भूमि सुधारों का क्रियान्वयन : पंचायतों के सहयोग के कारण किसी जमींदार द्वारा अतिरिक्त भूमि को छिपाए रख पाना अब संभव नहीं रहा। इसी प्रकार इस प्रकार की भूमि का वितरण भी अब अधिक समानतापूर्ण ढंग से होने लगा है।

4) विस्तार गतिविधियां : पंचायतें लोगों तक नई जानकारी पहुंचाने के काम में ग्रामीण स्तर कार्यकर्ताओं और अन्य सरकारी कर्मचारियों से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं। लोगों को नई टेक्नोलोजी, नई फसल या नए विचार को अपनाने के लिए राजी करने में पंचायती नेता बहुत सहायक होते हैं क्योंकि वे स्वयं किसान होते हैं, इसलिए अधिकारियों की तुलना में उनकी बात जल्दी लोगों के गले उतरती है।

5) झगड़े निपटाना : पश्चिम बंगाल में न्याय पंचायतें नहीं हैं और झगड़े निपटाना पंचायतों का कानूनी दायित्व नहीं है। फिर भी पत्नी-पति का झगड़ा हो या भाइयों का मतभेद, पड़ोसियों की तनातनी हो या जमींदार व काश्तकार का झगड़ा, लोग अपने विवाद सुलझाने के लिए पंचायती नेताओं के पास ही जाते हैं। पंचायती नेताओं के घरों पर अलग-अलग कामों के लिए मदद लेने के लिए आने वालों का तांता लगा रहता है।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गांवों में जमींदारों और अमीर किसानों द्वारा चलाए जा रहे परम्परागत सत्तातंत्र के मुकाबले अब पंचायतें भी सत्ता केन्द्र बन गई हैं। स्थानीय पंचायत का नेता, अनपढ़, गरीब और छोटी जाति का होने के बावजूद गांव का महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। पंचायतों की शक्ति के कारण अब गरीबों को सुरक्षा और बीच-बचाव के लिए अमीरों के पास नहीं दौड़ना पड़ता। यह संभवतः पश्चिम बंगाल में पंचायती प्रणाली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। गरीब व्यक्ति को गरिमा मिल गई है।

राज्य में सत्तारूढ़ मोर्चे के विरोधियों ने पंचायती राज संस्थाओं में 'भ्रष्टाचार' और 'पक्षपात' के आरोप लगाए हैं। परन्तु चुनाव परिणामों से सिद्ध हो गया है कि जनता के बहुमत ने इन आरोपों को सही नहीं माना है। वास्तव में पंचायतों में भ्रष्टाचार प्रशासन तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार से अधिक नहीं है। 60000 निर्वाचित सदस्यों में से कुछ सौ लोगों के भ्रष्ट आचरण के कारण पूरे तंत्र को भ्रष्ट नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत पंचायतों को दायित्व सौंपे जाने से भ्रष्टाचार में कमी आई है। निर्णय प्रक्रिया में इतने अधिक लोगों के शामिल रहने से भ्रष्ट आचरण या भाई-भतीजावाद जल्दी सामने आ जाता है। अब वे दिन लद गए जब कागजों पर ही किसी परियोजना को पूरा दिखा कर सारी राशि मंजूर करा ली जाती थी।

राज्य सरकार ने भ्रष्टाचार की संभावनाओं को और कम करने के लिए कुछ उपाय किए हैं। इनमें बैंक में तीन लोगों

द्वारा संयुक्त खाता रखना, लाभान्वित होने वाले लोगों की सूची नोटिस बोर्ड पर लगाना और गांवों में ऐसी बैठकें आयोजित करना शामिल हैं, जिनमें आम लोग पंचायती नेताओं से काम के विभिन्न पहलुओं पर पूछताछ कर सकेंगे।

पिछले चुनावों में यह बात सामने आई कि जो नेता राशि या सहायता निर्धारित करने में पक्षपात करते हैं, वे चुनाव में हार जाते हैं, क्योंकि सत्तारूढ़ वामपंथी मोर्चे ने सभी चुनावों में विजय हासिल की है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि सहायता बांटने में पक्षपात बरतने के मामले बहुत कम हैं।

यद्यपि इन सफलताओं के कारण ग्रामीण जीवन, खासकर गरीबों का जीवन बदल गया है और आर्थिक विकास के लिए अनुकूल स्थिति तैयार हो गई है, किन्तु ऐसी अनेक समस्याएं है जिनकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। ये समस्याएं इस प्रकार हैं :—

1) प्रशासन की ओर से विरोध : प्रारम्भ में ग्रामीण प्रशासन ने पंचायतों का यह कह कर विरोध किया कि पंचायती नेता अनपढ़ और अनुभवहीन हैं। किन्तु शिक्षा के अभाव के बावजूद ये लोग सूझबूझ, कार्यक्षमता और नेतृत्व गुण में किसी से कम नहीं थे। शुरू में प्रशासनिक अधिकारियों ने इन नेताओं की उपेक्षा की किन्तु अब अधिकतर अधिकारियों ने पंचायती राज नेताओं का महत्त्व और अपनी सीमाएं पहचान ली हैं तथा पंचायतों को अपना काम सुचारू ढंग से चलाने में मदद दे रहे हैं।

2) बैंकों और सहकारी संस्थाओं की ओर से विरोध : सरकारी सहायता क्योंकि प्राय: बैंकों की मार्फत दी जाती है, इसलिए पंचायतों व बैंकों में तालमेल रहना अत्यंत आवश्यक है। प्रारम्भ में दोनों का एक दूसरे के प्रति अविश्वास बना रहा, जिस कारण समन्वित ग्रमीण विकास परियोजना संतोषजनक ढंग से लागू नहीं हो पाई। किन्तु अब दोनों ने एक दूसरे के दृष्टिकोण और प्राथमिकताओं को समझ लिया है और उनके सम्बंध सुधर रहे हैं।

3) स्थानीय आग्रह : यह बहुत गंभीर समस्या है। स्थानीय परिस्थितियों की पहचान होना अपने आप में लाभदायक बात है, किन्तु आत्म-केन्द्रित स्थानीय दृष्टिकोण के कारण कई झंझट खड़े हो जाते हैं। हर गांव या बस्ती की ओर से सब तरफ की सुविधाओं की अपने लिए मांग की जाने लगती है।

4) परजीवी प्रवृत्ति का पनपना : पंचायतों के सतत् कार्यों से कई बार लोगों में निर्भरता को बढ़ावा मिलता है। गांव के लोग कच्ची सड़क आदि बनाने जैसे काम के लिए, जिसे वे स्वयं कर सकते हैं, पंचायती तंत्र की ओर निहारते रहते हैं। सब काम पंचायतें करेंगी यह धारणा जोर पकड़ती जा रही है, जो कि 'आत्म-निर्भरता' की भावना के विपरीत है। स्वयंसेवी आधार पर जन सहयोग लेने के प्रयास नहीं किए गए हैं।

पिछले तीन वर्षों से जिला स्तर की योजना बनाने में भी पंचायतें सहयोग दे रही हैं। अधिकतर पंचायती नेता वार्षिक बजट प्रक्रिया की आवश्यकताओं को समझ गए हैं। यही नहीं, वे फसलों को दीर्घावधि लक्ष्यों, अधिक उत्पादन तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे विषयों को ध्यान में रखते हुए योजनाएं तैयार करने की विधि भी अब सीख रहे हैं।

कुल मिलाकर पश्चिम बंगाल में यह अत्यंत उपयोगी और सार्थक अनुभव रहा है और इस दिशा में बहुत कुछ हासिल हो चुका है।■

अनुवाद : सुभाष चन्द्र सेतिया

पंचायती राज : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

डा.एम.शिवैया*

सही मायने में लोकतंत्र यह नहीं है कि केंद्र में बैठकर 20 आदमी काम करें। जब तक गांव के लोग इससे नहीं जुड़ते, लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो सकती।" ये शब्द महात्मा गांधी के हैं जो उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ ही दिन पूर्व "यंग इंडिया" में प्रकाशित एक लेख में कहे थे। पंचायती राज की कल्पना उन्हीं की धारणाओं के अनुरूप सत्ता के विकेंद्रीकरण के लिए की गई थी। इसके पीछे दो और प्रमुख कारण थे – एक तो अपने समय के सबसे विशाल ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत सामुदायिक विकास की योजना की जरुरतें पूरी करने के लिए और दूसरा कारण था 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन संगठनों का क्रमिक विकास। 1861-62 के दौरान वायसराय की परिषद के एक सदस्य सेमुअल लैंग ने एक वक्तव्य दिया था जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। उनका कहना था कि भारत की दो ही सबसे बड़ी जरुरतें हैं, एक सिंचाई और दूसरा संचार साधनों का विकास। इन जरुरतों की पूर्ति के लिए उन्होंने कहा कि शाही खजाने से इतने धन की व्यवस्था नहीं हो सकती और अच्छा ही हो कि स्थानीय कामों के लिए वहीं से कर वसूल किए जाएं। लैंग का कहना था कि इससे धन की जरुरत ही पूरी नहीं होगी बल्कि अपनी मदद अपने आप करने की भावना को बल मिलेगा और नगरपालिका जैसे संगठनों का विकास होगा। उन्होंने यह भी महसूस किया कि भारत में पंचायतों की व्यवस्था ऐसी है जो यह काम अपने ऊपर ले सकती है। इसके बाद 1882 में लार्ड रिपन स्थानीय स्वायत्त शासन से संबंधित अपना वह प्रसिद्ध प्रस्ताव लाए जिसमें इस व्यवस्था को और उदात्त रूप दिया गया और जिला मण्डलों की परिकल्पना की गई।

लार्ड रिपन के प्रस्ताव के कुछ वाक्य इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनका यहां उद्धरण देना आवश्यक है। प्रस्ताव में कहा गया कि 'स्थानीय स्वायत्त शासन' का विस्तार इसलिए वांछनीय नहीं कि इससे प्रशासन में सुधार होगा। इसका मुख्य उद्देश्य तो यह है कि इससे लोगों में राजनीतिक चेतना जगेगी। इस प्रस्ताव के पीछे यह भावना थी कि मनमाने प्रशासन की जगह एक ऐसी व्यवस्था की जा सके जिसमें जनसाधारण प्रशासन से प्रत्यक्ष रूप में जुड़ा हो।

स्थानीय स्वायत्त शासन से संबंधित कई कानून समय-समय पर बनाए गए, पर इस दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। इसका प्रमुख कारण यह था कि नौकरशाही यथास्थिति बनाए रखने के पक्ष में थी और स्थानीय संगठनों को प्रशासन की कसौटी पर ही परखा गया। राजनीतिक चेतना के पक्ष को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया। हालांकि यह पक्ष दूसरे पक्ष से कहीं अधिक महत्वपूर्ण था।

जब देश आजाद हुआ तो महात्मा गांधी की विचारधारा से कोई भी अछूता नहीं था। ग्राम पंचायतों की कल्पना स्थानीय शासन की आदर्श व्यवस्था के रूप में निरूपित की गई। स्वतंत्रता से पहले ही मांट फोर्ट सुधारों के अंतर्गत देश के अधिकांश भागों में और रियासतों में 1919 और 1940 के दौरान ग्राम पंचायतें स्थापित हो गई थीं। लेकिन ग्राम पंचायतों के ऊपर किसी व्यापक स्तर पर कोई ऐसी व्यवस्था बनाने के लिए ठोस काम नहीं हुआ जिससे पंचायती राज की स्थापना हो सके।

1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम लागू किया गया। और उसकी सफलता के लिए यह जरुरी समझा गया कि कोई ऐसी व्यवस्था की जानी जरुरी है। वैसे 1951 में ही पन्द्रह राज्यों में एक फाउंडेशन के सहयोग से परीक्षण के तौर पर परियोजनाएं शुरु की गई थीं और इनके लिए गांव, मण्डी और विकास खण्ड के स्तर पर स्थानीय संगठनों का प्रारूप

* निदेशक, पंचायती राज केंद्र, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद

बना था इसके अनुसार मण्डी में पन्द्रह से 25 गांव शामिल किए गए थे। जहां विपणन के अतिरिक्त संचार, मनोरंजन और अन्य सुविधाओं का केंद्र बनाने की कल्पना थी। एक विकास खण्ड में चार-पांच मण्डियां शामिल करनी थी। कुछ ग्रामीण और कुछ शहरी कस्बे के रूप में मण्डी की कल्पना धनाभाव के कारण साकार रूप न ले सकी और यह समझा गया कि धीरे-धीरे गैर सरकारी प्रयासों से ही मण्डी केंद्र स्थापित हो जाएंगे। हां विकास खण्ड को मान्यता जरुर मिल गई। यह नया ढांचा जल्दी ही पूरे देश में स्थापित हो गया। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत उस समय के राजनेता देश के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए कृतसंकल्प थे और उन्होंने इस व्यवस्था के विस्तार पर पूरा जोर दिया। इस व्यवस्था को प्रशासनिक व्यवस्था से जोड़ने के लिए 1955 में विकास खण्ड सलाहकार समितियां बनाई गईं जिसमें खण्ड स्तर के प्रशासनिक कर्मचारियों के अतिरिक्त विधायकों, स्थानीय संगठनों, सहकारी समितियों और स्वैच्छिक संगठनों के प्रतिनिधियों को भी शामिल किया गया और यहीं से पंचायती राज की शुरुआत हुई। 1956 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल बनाया गया कि वह विभिन्न विकास योजनाओं, सामुदायिक विकास परियोजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रमों को लागू करने में धन के अधिकाधिक सदुपयोग और कार्यकुशलता बढ़ाने के बारे में सुझाव दे। इसका उद्देश्य भी केवल प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार लाना ही नहीं था, बल्कि बहुत कुछ वही था जो लार्ड रिपन के प्रस्ताव में था। दूसरी पंचवर्षीय योजना में सुझाव दिया गया कि ग्राम पंचायत के ऊपर भी ऐसे लोकतांत्रिक संगठन हों जो धीरे-धीरे सामान्य प्रशासन का काम अपने ऊपर ले लें। कानून और व्यवस्था, न्याय और राजस्व व्यवस्था के कुछ काम छोड़कर बाकी सभी काम खुद कर सकें। उन दिनों 'जनता की सत्ता' का नारा बुलंद था।

महात्मा गांधी की नीति भी यही थी। उनका कहना था कि पंचायती राज स्थापित हो जाता है, तो वह काम स्वयं ही हो जाएगा जो हिंसा से नहीं हो सकता। अगर लोग सहयोग न करें तो जमींदारी और पूंजीवाद अपने आप समाप्त हो जाएगा। बापू का एक और उद्देश्य भी द्रष्टव्य है — 'हरिजन' में उन्होंने एक बार लिखा था कि लोकतंत्र एक महान व्यवस्था है और इसी कारण उसके दुरुपयोग की संभावनाएं भी बहुत बढ़ी हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि हम लोकतंत्र से बचें। हमें करना तो यह होगा कि लोकतंत्र के दुरुपयोग की आशंकाओं को कम से कम कर सकें।

बलवंत राय मेहता अध्ययन दल ने इन्हीं नीतियों के अनुसार तीन स्तर पर पंचायती राज का ढांचा बनाने का सुझाव दिया। उनका कहना था कि केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण दोनों ही जरुरी हैं।

पंडित नेहरु ने योजनाबद्ध विकास की शुरुआत करते हुए इस बात पर भी जोर दिया कि गरीबों का अधिक से अधिक कल्याण हो। पंचायती राज के माध्यम से गरीब और अमीर की खाई पाटना चाहते थे और उनका कहना था कि पंचायती राज ही जनता का वास्तविक स्वराज्य है।

प्रारम्भिक चरणों में पंचायती राज व्यवस्था का बहुत उत्साह से स्वागत किया गया। राजस्थान और आंध्र प्रदेश से इसकी शुरुआत हुई और फिर कई अन्य राज्यों में भी यह व्यवस्था कर दी गई। महाराष्ट्र और गुजरात दो ऐसे राज्य थे जिनमें यह व्यवस्था लागू नहीं की गई बल्कि जिला स्तर पर इसका ठोस ढांचा तैयार किया गया। इन दोनों राज्यों की जिला परिषद प्रणाली आज भी देश के लिए आदर्श है।

पंचायती राज व्यवस्था की समीक्षा करने के लिए हम इसे तीन चरणों में बांट सकते हैं। प्रारंभिक चरण 1959 से 1966 तक, दूसरा चरण 1967 से 1976 तक और तीसरा 1977 से लेकर अब तक।

प्रारम्भिक चरण में पंचायती राज के प्रति बहुत उत्साह जरुर था लेकिन राजस्थान, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्यों को छोड़कर अन्य कई राज्यों में कई कठिनाइयां आईं। केरल में बस्तियां एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और वहां पंचायत समितियां बनाना मुश्किल था। वहां जिला परिषद जरुर बनायी जा सकती थी पर राजनीतिक स्थिति को देखते हुए ऐसा नहीं हुआ। तमिलनाडु में फूंक-फूंक कर कदम रखने की कोशिश की गई। कर्नाटक में स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। देश की उत्तर-पूर्वी क्षेत्रीय व्यवस्था देश के अन्य भागों से कुछ अलग रही है और वहां की प्रशासनिक व्यवस्था भी भिन्न थी। इस क्षेत्र में जनजातीय परिषदें थीं। अन्य कई राज्यों में पंचायती राज की स्थापना के कानून तो पास हो गए पर लागू करने में अनावश्यक विलंब हुआ।

पंचायती राज का दूसरा चरण (1967-76) निराशाजनक रहा। इसके कई कारण थे। इसका सबसे प्रमुख कारण तो यह था कि कृषि के विकास की नीति में

परिवर्तन किया गया। सघन क्षेत्र विकास कार्यक्रम पर जोर दिया गया और इससे सामुदायिक विकास कार्यक्रम का महत्व कम हो गया। स्वत: ही पंचायती राज का महत्व घट गया। दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह था कि पंचायती राज व्यवस्था में ऊंची जाति के लोगों का प्रभुत्व बन गया और बहुसंख्यक पिछड़ी जातियों के लोग इस व्यवस्था से असंतुष्ट थे। यह समझा जाने लगा कि पंचायती राज संगठन ऊंची जाति के लोगों और संपन्न वर्ग के हितों के लिए ही है।

हरित क्रांति का असर भी पंचायती राज व्यवस्था के अनुकूल नहीं रहा। छोटे और मझोले किसानों की दशा में कोई खास सुधार नहीं हुआ। खेती की पैदावार बढ़ाने के तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए पंचायती राज व्यवस्था बहुत-से लोगों को बाधक नजर आई और केंद्र सरकार ने भी इस व्यवस्था की अवहेलना की। धीरे-धीरे लोग इससे कटते नजर आए। राजनीतिक नेताओं को सत्ता में आने के लिए वोट चाहिए और अधिकांश वोट उन्हें देश के ऐसे ही गरीब वर्ग से मिलते हैं जो सत्ता से अलग-थलग पड़े रहे। इसी के फलस्वरूप 1971 के आसपास गरीबी हटाओ का नारा गूंजा तब राजनेताओं ने यह समझा कि गरीबी उन्मूलन के लिए वे लोग अधिक सहायक सिद्ध नहीं हो सकते जिनका प्रभुत्व पंचायती राज संगठनों पर था।

भारत-चीन और भारत-पाक संघर्षों के कारण भी सत्ता के केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। बंगलादेश संकट से इस प्रवृत्ति को और बल मिला। इधर देश में राजनीतिक घटनाओं का चक्र चला और आपातकाल की घोषणा की गई। जनसाधारण को सत्ता से जोड़ने के बजाए सत्ता के स्थायीत्व पर जोर दिया गया। फलस्वरूप पंचायती राज संगठनों को वह नेतृत्व नहीं मिला जैसा उन्हें मिलना चाहिए था।

1977-78 के दौरान पंचायती राज व्यवस्था को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिए नई शुरुआत की गई। फिर 1985-86 में प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने इस दिशा में विशेष प्रयत्न किए और राज्य सरकारों से अनुरोध किया कि वे भी इस दिशा में ठोस काम करें। इसका कुछ अच्छा परिणाम निकला। कुछ अन्य राज्यों के अलावा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार जैसे बड़े राज्यों ने भी पंचायती राज संगठनों को सुदृढ़ बनाने के लिए कई कदम उठाए हैं। पश्चिम बंगाल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश जैसे राज्य, जहां गैरकांग्रेस आई सरकारें हैं, वे पंचायती राज की स्थापना के लिए और भी अग्रसर हैं। आशा है कि यह भी जल्दी ही महाराष्ट्र और गुजरात की बराबरी करने लगेंगे। कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में भी पंचायती राज कानूनों में मण्डल पंचायतों की व्यवस्था की गई है।

स्थिति उत्साहवर्द्धक जरूर है पर हमें यह नहीं भूलना होगा कि पंचायती राज व्यवस्था के प्रति मानसिक अवरोध पहले जैसे ही बने हुए हैं। इस संबंध में हमें तीन बातों का ध्यान रखना होगा। पहला आर्थिक विकास, दूसरा पंचायती राज संगठनों पर ऊंची जाति के लोगों का प्रभुत्व और तीसरा इन संगठनों का प्रशासनिक कार्य।

आर्थिक विकास के संबंध में विचार करते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह विकास केवल प्राकृतिक और टेक्नालोजी पर ही निर्भर नहीं है बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जैसे विभिन्न 'गैर आर्थिक' कारण भी बहुत अधिक महत्व रखते हैं। पंचायती राज संगठनों से संबंधित विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि जहां भी इन संगठनों को काम करने का मौका मिला, वहां स्कूल, अस्पताल और सड़कों के निर्माण तथा विद्युतीकरण जैसे विकास कार्यों की दर काफी तेज रही। एक अनुमान के अनुसार प्रशासनिक देरी के कारण ही देश को लगभग एक हजार करोड़ रुपये का नुकसान प्रतिवर्ष उठाना पड़ता है। इस दृष्टि से देखें तो पंचायती राज संगठनों की उपयोगिता के बारे में किसी को कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

जहां तक पंचायती राज संगठनों पर ऊंची जाति के लोगों और संपन्न वर्ग का प्रभुत्व का सवाल है, तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रारंभिक चरणों में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि गांव और खंड स्तर पर काम करने वाले सरकारी कर्मचारी भी प्राय: इसी वर्ग के हैं। समाज शास्त्र का कोई भी अध्येता इससे इंकार नहीं करेगा कि पंचायती राज संगठनों पर धीरे-धीरे इसी वर्ग के दूसरे लोगों का प्रभुत्व बनेगा और इसी फेरबदल में इन संगठनों को ऐसा नेतृत्व मिल जाएगा जैसा कि होना चाहिए। उदाहरण के लिए पश्चिम बंगाल में पंचायती राज संगठनों के चुनाव में 51 प्रतिशत सफल उम्मीदवार ऐसे हैं जो नितांत युवा हैं और साथ ही शिक्षित भी। एक भी उम्मीदवार ऐसा नहीं जीता जो निरक्षर हो। जीतने वाले उम्मीदवारों में 56 वर्ष से अधिक आयु वर्ग का अनुपात केवल 4 प्रतिशत रहा। इससे स्पष्ट है कि

मतदाताओं ने परम्परागत मूल्यों, आयु और जातिपाति का ध्यान नहीं रखा। वामपंथी विचारधारा के कारण ही यह सब कुछ हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। राजस्थान में 1981 में हुए ग्राम पंचायत चुनाव से भी यह स्पष्ट है कि मतदाताओं ने शिक्षित व्यक्तियों को चुनना पंसद किया।

प्रशासन व्यवस्था पर यदि हम एक नजर डालें तो हमें यह मानना ही होगा कि सदियों से यह व्यवस्था शोषण पर आधारित रही है। नौकरशाही इसी व्यवस्था को बनाये रखना चाहे तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। पंचायती राज संगठन अधिक सशक्त और सक्रिय हो तो इस व्यवस्था में परिवर्तन आयेगा और यही हमारा उद्देश्य है। इसके लिए यह जरुरी है कि पंचायती राज संगठनों के लिए नियमित रूप से चुनाव हों। प्रधानमंत्री इस तथ्य से अवगत हैं और ऐसी व्यवस्था करने के लिए प्रयत्नशील भी हैं।

संक्रमण काल में यह जरुरी है कि प्रशासनिक व्यवस्था में कहीं-कहीं कुछ रूकावटें आएं और सरकारी तंत्र तथा पंचायती राज संगठनों के नेतृत्व में विरोध हो। यदि पंचायती राज संगठन मजबूत होते हैं तो धीरे-धीरे ये समस्याएं स्वतः ही सुलझ जाएंगी। प्रशासनिक कार्य में बाधा के नाम पर पंचायती राज संगठनों की अवहेलना करना बुद्धिमत्ता नहीं होगी। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि स्थानीय स्वायत्त शासन अथवा पंचायती राज व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य प्रशासनिक कार्य करना नहीं, बल्कि लोगों में राजनीतिक चेतना लाना और उन्हें सत्ता में भागीदार बनाना है। वैसे आर्थिक विकास की दृष्टि से भी पंचायती राज संगठनों का महत्व कम नहीं है। समन्वित ग्रामीण विकास योजना जैसे कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में हमें उतनी सफलता नहीं मिली जितनी हम चाहते थे। इसका प्रमुख कारण प्रशासनिक ढांचे की कमियां-कमजोरियां रही हैं जिन्हें पंचायती राज संगठन दूर कर सकते हैं। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों और पंचायती राज संगठनों पर विचार करते हुए हमारा ध्यान भ्रष्टाचार, सत्ता के दुरुपयोग, अवांछनीय हस्तक्षेप, नियमों का उल्लंघन और भाई-भतीजावाद जैसी बुराइयों की ओर भी जाता है। हम इन बुराइयों से बच नहीं सकते और न ही इनके नाम पर इन संगठनों अथवा कार्यक्रमों की आलोचना कर सकते हैं। जरुरत तो यह है कि इन समस्याओं से निपटने के लिए कारगर कदम उठाए जाएं।

पंचायती राज संगठनों की अवहेलना का एक और कारण यह रहा है कि हमारे राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था मुख्य रूप से शहरों पर आधारित रही है। शहरी लोगों का प्रभुत्व हर क्षेत्र में साफ नजर आता है। यदि हमें यह प्रवृत्ति बदलनी है तो पंचायती राज संगठनों का सहारा हमें लेना ही होगा।

हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य हैं-न्यायोचित आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, गरीबी और निरक्षरता का उन्मूलन, और सही मायने में सभी का जीवन समृद्ध करना। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ग्रामीण विकास का समुचित प्रबंध किया जाना नितांत आवश्यक है। इसमें पंचायती राज संगठनों का विशेष महत्व है। इसके लिए यह जरुरी है कि ग्राम पंचायतों के साथ-साथ मण्डल पंचायतों को भी सशक्त बनाया जाए। खेती की पैदावार की बिक्री, भू-संरक्षण, वनों का विकास, गोबर गैस संयंत्र लगाने का काम, तालाब बनाने का काम, छोटे सिंचाई साधनों के विकास, ग्रामोद्योगिकरण और ऐसे बहुत से काम हैं जो केवल ग्राम पंचायत नहीं कर सकते और जिन्हें पूरा करने के लिए मण्डल पंचायतों की जरुरत है।

देश भर में लगभग 25 हजार मण्डल पंचायतों के लिए धन की व्यवस्था कोई इतनी बड़ी समस्या नहीं है। प्रत्येक मण्डल पंचायत के लिए प्रतिवर्ष पांच लाख रुपये की व्यवस्था यदि की जाए तो हमें 1250 करोड़ रुपये की वार्षिक आवश्यकता होगी। इसमें से यदि बीस प्रतिशत स्थानीय साधनों से जुटाया जाए तो बाकी एक हजार करोड़ रुपये केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर जुटा सकती हैं। इसके अतिरिक्त निजी व्यावसायिक प्रतिष्ठान भी एक-एक मण्डल के लिए धन की व्यवस्था कर सकते हैं। स्वैच्छिक संगठन, कालेज और दूसरे प्रतिष्ठान भी इस काम में मदद कर सकते हैं। अंत में इस बात पर जोर देना जरुरी है कि सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का काम पंचायती राज व्यवस्था को सौंप दिया जाना चाहिए। कमजोर वर्गों की सुरक्षा के लिए यदि कुछ कानूनी और दूसरे प्रावधान करना जरुरी हो तो उन्हें भी किया जाना चाहिए। आजकल विभिन्न कार्यों के क्रियान्वयन के लिए अलग-अलग एजेंसियां हैं। उन सभी को पंचायती राज संगठनों के अधीन ले लेना चाहिए। इससे खर्च में भी कटौती होगी और प्रशासनिक व्यवस्था भी अधिक सुचारु होगी।□

प्रस्तुति — परमेश कश्यप
सेक्टर 4/551,
आर.के. पुरम, नयी दिल्ली।

ग्रामीण विकास और पंचायती राज

डा.एम.शिवैया
के.बी. श्रीवास्तव, एन.सी.जेना

देश के सामाजिक और आर्थिक विकास की सुनियोजित प्रक्रिया में पंचायती राज व्यवस्था का विशेष महत्व है इसके तीन पक्ष हैं :–
पहला स्थानीय स्वशासन, दूसरा विकास और तीसरा सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना ।

विकास का अर्थ आमतौर पर आर्थिक विकास समझा जाता है । किसी हद तक यह ठीक भी है । पर हमें यह नहीं भूलना होगा कि सामाजिक और आर्थिक पक्ष भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं । सामाजिक और राजनीतिक मसले कभी-कभी बहुत विवादास्पद हो जाते हैं । ऐसे विवादों से निपटने के लिए यह जरुरी है कि नीति निर्माताओं, प्रशासकों और बुद्धिजीवियों में विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान सुचारुरूप से हो । यदि ऐसा होता है तो ग्रामीण विकास के मार्ग में जो अवरोध हैं, वे स्वतः ही कम हो जायेंगे ।

सबसे पहले हम आर्थिक विकास में पंचायती राज के योगदान पर एक नजर डालें । गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता, ऐसी अनेक बड़ी समस्याएं हैं जिनसे निपटने के लिए यह जरुरी है कि बड़े-से बड़े पैमाने पर संगठनात्मक व्यवस्था को, प्रशासनिक व्यवस्था चाहे कितनी ही कुशल हो, यह काम उस पर पूरी तरह नहीं सौंपा जा सकता । ग्रामीण विकास के लक्षणों को हम तभी पूरा कर सकते हैं, जब लोग उसमें स्वयं सक्रिय रूप से शामिल हों । कहने की जरुरत नहीं कि पंचायती राज व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जो यह काम कर सकती है ।

पंचायती राज के महत्व को हमें तीन परिप्रेक्ष्य में देखना होगा । पहला परिप्रेक्ष्य, तात्कालिक लक्ष्यों की पूर्ति, के लिए पंचायती राज संगठन प्रशासनिक कमियों को दूर कर सकता है । इसके अतिरिक्त भ्रष्टाचार और प्रशासनिक ढील जैसे समस्याओं से भी किसी हद तक निपटा जा सकता है । कई विकासशील देशों में हुए अध्ययन से पता चलता है कि पंचायती राज जैसे सारे संगठनों की मदद से योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों को कहीं अधिक कारगर बनाया जा सकता है ।

दूसरे परिप्रेक्ष्य को हम मध्यकालिक परिप्रेक्ष्य कह सकते हैं । पंचायती राज नेतृत्व परम्परागत समाज को आधुनिकता से जोड़ता है । इसी नेतृत्व के फलस्वरूप नये विचार रुढ़िवादियों को प्रभावित करते हैं और धीरे-धीरे उन्हें नई दिशा में ले जाते हैं ।

अब हम तीसरे अर्थात दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य को लें। इसके अन्तर्गत हमारा लक्ष्य है लोगों को राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करना । दूसरे विश्व युद्ध के बाद शासन व्यवस्था निरन्तर अधिक से अधिक सामाजिक और आर्थिक दायित्व अपने ऊपर लेती आ रही है । विश्व के लगभग सभी देशों में ऐसा हो रहा है और पिछले कुछ दशकों से तो यह समझा जाने लगा है कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की प्रथम जिम्मेदारी शासन तन्त्र अथवा राज्य की ही है । इसलिए यह स्पष्ट है कि विकासशील देशों में लोकतन्त्र की जरुरत विकसित देशों की अपेक्षा कहीं ज्यादा है । हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि लोकतन्त्र का उद्देश्य लोगों का आर्थिक स्तर सुधारना ही नहीं, बल्कि हर दृष्टि से जनजीवन को समृद्ध बनाना है ।

लोकतन्त्र में चुनाव प्रक्रिया एक ऐसी व्यवस्था है जिससे उभरते हुये नेतृत्व और जनसाधारण के बीच सीधा संपर्क स्थापित होता है । एक ओर जहां जनसाधारण की बात नये

'ग्रामीण विकास हेतु संस्था निर्माण का एक अध्ययन' पुस्तक से उद्धृत ।

नेताओं तक पहुंचती है,तो वहीं लोग नये नेताओं के विचारों से भी प्रभावित होते हैं। यदि हम इस दृष्टि से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचायती राज चुनाव देश के ग्रामीण क्षेत्रों को आधुनिकता की ओर ले जाते हैं। यह माना जा सकता है कि पंचायती राज संगठनों पर ऐसे संपन्न वर्गों का प्रभुत्व बना हुआ है जिनके पास काफी जमीन-जायजाद है। पंचायती राज के विरोधी इसी तथ्य का सहारा लेकर यह कहते हैं कि पंचायती राज व्यवस्था सैद्धान्तिक रूप में भले ही ठीक हो पर वास्तविक धरातल पर यह सफल नहीं होगी। प्रारम्भिक चरण में संपन्न तथा सैभ्रान्त वर्ग का प्रभुत्व कोई आश्चर्य की बात नहीं, पर कोई भी समाजशास्त्री यह कभी स्वीकार नहीं करेगा कि यह प्रभुत्व सदा बना रहेगा। शुरु-शुरु में यह होना स्वाभाविक ही है कि पंचायती राज संगठनों पर एक संपन्न वर्ग का प्रभुत्व जब कभी होने लगे, तो दूसरा संपन्न वर्ग उसका स्थान ले ले। इसी तरह धीरे-धीरे लोगों का राजनीतिकरण होगा और पंचायती राज को सही नेतृत्व मिलेगा जो विकास कार्यक्रमों को तेजी से चला सकेगा। यह भी कोई जरुरी नहीं कि सम्पन्न ग्रामीण वर्गों का प्रभुत्व सभी जगह लम्बे अर्से तक बना रहेगा। प्रशासनिक ढांचे को और बेहतर बना कर हम जल्दी ही यह व्यवस्था कर सकते हैं कि पंचायती राज संगठनों को सही नेतृत्व जल्दी ही मिल सके। कहा जाता है कि पंचायती राज व्यवस्था में 1964 के आसपास से गिरावट आनी शुरु हो गई। पर यह गिरावट महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्य में नहीं आई जहां पंचायती राज व्यवस्था को वास्तव में अधिकार और साधन सौंप दिये गये थे और विकास कार्यक्रमों की जिम्मेदारी जिलाधीश से ले ली गई थी। पश्चिम बंगाल जैसे कई राज्यों में पंचायती राज चुनाव नियमित से रूप नहीं हुए और कुछ राज्यों में तो लम्बे अर्से तक चुनाव स्थगित रहे। इस तरह पंचायती राज संगठनों के प्रति उदासीनता को पंचायती राज व्यवस्था की असफलता कहना नितान्त अनुचित होगा। इसका यह मतलब नहीं कि हम अन्य कारणों का विश्लेषण न करें।

इस संबंध में समाजशास्त्रियों ने कई अध्ययन किये हैं। उत्तरप्रदेश के बारे में हैरोल्डगोड ने 1967 में एक अध्ययन किया था जिससे पता चला कि परम्परागत समाज में चुनाव कराये जाने से सही लोकतांत्रिक नेतृत्व उभर कर नहीं आया। यह तो एक क्रमिक विकास की व्यवस्था है जिसे हम तीन चरणों में बांट सकते हैं :— परम्परागत, संक्रमण और लोकतांत्रिक।

पहले चरण में गांव का नेतृत्व उन्हीं लोगों के पास रहा जिन्हें हम संपन्न वर्ग और ऊंची जाति के लोग समझते रहे हैं। दूसरा चरण ऐसा संक्रमण काल है जिसमें पुराने लोगों के साथ-साथ एक नया वर्ग भी गांव की राजनीति में सक्रिय हुआ और दो परस्पर विरोधी प्रवृतियां सामने आईं। तीसरे चरण में वही नेतृत्व होगा जिसे वास्तविक रूप से लोकतांत्रिक नेतृत्व कहते हैं। इस प्रकार हमारे सामाजिक ढांचे में भले ही जाति-पांति की भावना अभी भी बनी हो,पर अब उसका वह असर नहीं जो कभी पहले था।

बंगाल में ब्रिटिश राज की स्थापना से एक नये युग का उदय हुआ और बंगाल देश में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पुर्ननिर्माण का अग्रदूत बन गया। इस तरह पश्चिम बंगाल की स्थिति देश के दूसरे भागों से काफी अलग रही। स्वतन्त्रता के बाद और जमींदारी प्रथा समाप्त किये जाने से ग्रामीणक्षेत्रों में विकास के काम में स्थानीय स्वायत्तसंगठनों का महत्व बहुत बढ़ गया है। इन संगठनों को अधिकार देने के मामले में बहुत धीमी गति से काम हुआ। पश्चिम बंगाल पंचायत अधिनियम 1956 में पास हुआ था, मगर 1963 तक केवल 50 प्रतिशत गांवों में ही लागू हो पाया। इसी प्रकार पंचायती राज के मामले में भी बहुत धीमी गति से काम हुआ। खण्ड स्तर पर आंचलिक परिषद और जिला स्तर की परिषदों की स्थापना से संबन्धित कानून 1963 में बनाया गया। लेकिन कुछ ही समय में यह स्पष्ट हो गया कि ग्रामीण क्षेत्रों के आधुनिकीकरण में पंचायती राज व्यवस्था बहुत कारगर भूमिका निभा सकती है। छठे दशक के दौरान किये गये कुछ अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला कि "भद्र लोग और छोटे लोग" जैसे पुराने व तेजी से बेईमान होते जा रहे हैं। जमींदार परिवार और ऊंची जाति के लोगों का महत्व अब वह नहीं रहा जो पहले कभी था। गांव-गांव में पढ़े-लिखे युवकों और राजनैतिक दलों का प्रभाव भी बढ़ा है।

कुछ लोगों का कहना है कि चुनाव होंगे तो संघर्ष होंगे ही और इससे बचने के लिए चुनाव नहीं हों तो अच्छा है। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि लोकतन्त्र में यदि संघर्ष की भावना है तो वहीं परस्पर सहयोग की भावना भी है। और इसी प्रक्रिया से ग्रामीण विकास में तेजी आयेगी।

पंचायती राज चुनाव बहुत कम और बहुत लम्बे अर्से के बाद हुए। अत: उनके परिणाम के बारे में समाजशास्त्र

की दृष्टि से अध्ययन करना और सही निष्कर्ष निकालना एक कठिन कार्य है। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में पंचायती राज की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार राज्य में पंचायती राज चुनाव में गहरी दिलचस्पी स्वाभाविक ही थी। इस दिलचस्पी का एक और प्रमुख कारण था। 1977 में आम चुनावों के बाद राज्य में वामपंथी मोर्चे की सरकार सत्ता में आ गई और पंचायती राज चुनावों में देश में पहली बार राजनीतिक दल औपचारिक रूप से अपने चुनाव चिन्हों पर इतने बड़े पैमाने पर चुनाव लड़ रहे थे। सात मान्यता प्राप्त दल मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, कांग्रेस (आई), कांग्रेस एस, रेवल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी, फारवर्ड ब्लाक, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और जनता पार्टी के उम्मीदवार पार्टी के सुरक्षित चुनाव चिन्हों पर चुनाव लड़े। अन्य उम्मीदवारों को निर्धारित चुनाव चिन्ह सूची में अपने लिए चुनाव चिन्ह छांटने के लिए कहा गया। निर्दलीय, उम्मीदवार कानूनी रूप से चुनाव लड़ने के लिए स्वतन्त्र जरूर थे पर राजनीतिक माहौल और प्रशासनिक व्यवस्था से ऐसे उम्मीदवार काफी हतोत्साहित हुए। पी.सी.सेन राजनीतिक दलों के आधार पर चुनाव कराये जाने के खिलाफ थे। पर ऐसे लोग अलग-थलग पड़ गये। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में वामपंथी मोर्चे की सरकार ने 8 राजनैतिक दलों के आधार पर ही चुनाव कराने की व्यवस्था की। इस व्यापक व्यवस्था में 30,000 चुनाव क्षेत्र थे और मतदाताओं की संख्या ढाई करोड़ थी। ग्रामपंचायतों के लिए 46,836, पंचायत समितियों के लिये 8,467 और जिला परिषदों के लिये 648 सदस्य चुने जाने थे।

राजनैतिक दलों द्वारा उम्मीदवारों का चयन एक जटिल कार्य था। जहां दूसरी ओर राजनीतिक विचाराधारा, विश्वास और आचरण का ध्यान था, तो वहीं दूसरी ओर सुविधा, उम्मीदवारों के जीतने की संभावना, व्यक्तिगत पसन्द-नापसन्द जैसे पहलू भी थे। वामपंथी मोर्चे की एक समिति ने इस सबंध में कुछ नीति निर्धारित की थी। इस स्थिति के अनुसार ऐसे उम्मीदवारों का चयन होना था जो सामाजिक कार्यकर्ता हो, शिक्षक अथवा लोकप्रिय नेता हो अथवा ऐसा नेता हो जो वामपंथी मोर्चे की सरकार द्वारा घोषित कार्यक्रमों को लागू करने में सक्षम हो। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का टिकट पाने के लिये बहुत से लोग लालायित थे। जिन व्यक्तियों को टिकट नहीं मिला, उन्होंने आरोप लगया कि उम्मीदवारों के चयन में निहित स्वार्थों का ध्यान रखा गया है और योग्य उम्मीदवारों को नामांकित नहीं किया गया है। वामपंथी मोर्चे में शामिल राजनीतिक दलों में सीटों के बंटवारों को लेकर तो और भी झगड़े हुए। एक अनुमान के अनुसार मोर्चे में शामिल दल ने लगभग 6000 सीटों पर एक-दूसरे के खिलाफ चुनाव लड़े।

चुनाव प्रचार अभियान बहुत जोर-शोर से चला। नये राजनीतिक माहौल में आमतौर पर लोगों ने यह स्वीकार किया कि वामपंथी मोर्चे की सरकार पंचायती राज के माध्यम से सत्ता के विकेन्द्रीकरण और लोगों को सत्ता सौंपने में विश्वास करती है। मोर्चे ने ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिये एक 36 सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की। मोर्चे का यह भी कहना था कि जोतदार और महाजनों जैसे निहित स्वार्थों से संघर्ष करना जरूरी है और यही लोग कांग्रेस और जनता के समर्थक हैं। कांग्रेस और जनता पार्टी ने सुरक्षात्मक रुख अपनाया। उनका कहना था कि ग्रामीण जीवन में राजनीति लाना एक खतरनाक बात है। इन दोनों दलों का यह भी आरोप था कि वामपंथी मोर्चा पंचायती राज के माध्यम से अपने कार्यकर्ताओं का जाल फैला रहा है।

चुनाव प्रचार में दिलचस्पी का मतलब यह नहीं कि वोट डालने वाले मतदाताओं की संख्या अधिक रहेगी। हां इतना जरूर है कि इससे लोगों को चुनाव के बारे में जानकारी मिली। अधिकांश लोगों का कहना था कि चुनावों के बारे में उन्हें जानकारी लोगों की बातें सुनकर मिली। समाचारपत्रों, रेडियो, राजनीतिक दलों और दूसरे साधनों से उन्हें इतनी जानकारी नहीं मिली। एक और खास बात देखने में यह आई कि लोगों को चुनाव होने के एक महीने पहले इस सम्बन्ध में जानकारी मिली और उम्मीदवारों के बारे में उन्हें लगभग दो सप्ताह बाद पता चला। वैसे भी चुनाव अभियान ने बाद में ही जोर पकड़ा।

लगभग एक तिहाई लोगों का कहना था कि उन्होंने चुनाव में गहरी दिलचस्पी ली। एक तिहाई लोगों की रूचि चुनाव में साधारण रही और बाकी की कम। एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह रही कि चुनाव में जात-पांत का कोई खास असर नहीं पड़ा। 84 प्रतिशत लोगों का यही कहना था। जिन लोगों ने हमारे प्रश्नों के उत्तर दिये उनका कहना था कि घर-घर चुनाव प्रचार करना सर्वाधिक प्रभावी रहा। जुलूसों का भी काफी प्रभाव पड़ा और उसके बाद पोस्टर, और

सार्वजनिक सभाओं का असर पड़ा। इसी तरह पर्चे बांटने का कोई खास प्रभाव नहीं रहा। जाहिर है समाचारपत्र और पर्चे उन्हीं लोगों के लिए थे जो पढ़े-लिखे थे। सबसे बड़ी बात यह है कि जाति पर आधारित सभाओं का असर नगण्य रहा।

पंचायती राज के काम के बारे में लोगों के मन में कोई भ्रम नहीं था। बहुत ही कम लोग ऐसे थे जिन्होंने पंचायती राज संगठनों को बहुत उपयोगी बताया। मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि यह पंचायती राज चुनाव 14 वर्ष बाद हुए और वित्तीय साधनों की कमी और दूसरे कारणों से उनकी कार्यकुशलता बहुत कम हो गई थी। जिन लोगों ने पंचायती राज संगठनों की उपयोगिता पर संदेह प्रकट किया उनमें बहुत से लोग ऐसे थे जिन्होंने स्थिति के लिए भ्रष्टाचार को जिम्मेदार ठहराया।

पंचायती राज संगठनों की उपलब्धियों के बारे में पूछे गये सवालों के उत्तर में लोगों का कहना था कि इनसे जनसाधारण में राजनीतिक चेतना आई है। 49 प्रतिशत लोगों का कहना था कि इससे जनसाधारण के लिये लोकतन्त्र अधिक सजीव हुआ। 42 प्रतिशत लोगों का मानना था कि पंचायती राज संगठनों से गरीबों की भलाई हुई है। 40 प्रतिशत लोगों का कहना था कि इससे नया गतिशील नेतृत्व उभरा है। 26 प्रतिशत लोगों का कहना था कि पंचायती राज संगठन सरकारी तन्त्र को अधिक सक्रिय करने में सफल हुए हैं। कहना न होगा कि यदि चुनाव नियमित रूप से होते तो लोगों की प्रतिक्रिया और अच्छी रहती। हमने अपने प्रश्नावली में एक यह प्रश्न पूछा था कि क्या पंचायती राज संगठनों को समाप्त कर दिया जाना चाहिये। लगभग 60 प्रतिशत ने कहा कि ऐसा नहीं होना चाहिये। 39 प्रतिशत लोगों ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं ही नहीं दिया और केवल 1.4 प्रतिशत लोग ही ऐसे थे जे पंचायती राज संगठनों को समाप्त करने के पक्ष में थे। इससे स्पष्ट है कि तमाम कमियों और सीमाओं के बावजूद पंचायती राज संगठनों को बनाये रखने की जरुरत है। एक अन्य प्रश्न के उत्तर में लगभग 77 प्रतिशत लोगों ने कहा कि पंचायती राज संगठनों को अपना ध्यान ग्रामीण क्षेत्रों पर ही केन्द्रित रखना चाहिए।

पंचायती राज चुनावों में लोगों का उत्साह इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि लगभग 58 प्रतिशत लोगों की राय में यह चुनाव लोकसभा और राज्य विधान सभा के चुनाव से अधिक 'दिलचस्प' रहा। लोगों की राय में स्कूल, अस्पताल और सड़क निर्माण जैसी सुविधायें चुनावों के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहीं। इसके बाद कृषि विकास सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा। शहरों में रहने वाले सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता इस तथ्य से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

जिन लोगों से चुनाव में वोट डालने के बारे में पूछा गया उनमें से 96 प्रतिशत लोगों का कहना था कि उन्होंने अपना वोट डाला। इनमें से 87 प्रतिशत का कहना था कि वे वोट डालने को स्वयं उत्सुक थे और शेष 7 प्रतिशत ने कहा कि उन्हें दूसरे लोगों ने वोट डालने के लिये प्रेरित किया। केवल ढाई प्रतिशत लोग ऐसे थे जिन्होंने कहा कि उन्होंने मतदान नहीं किया और उसका कारण यह बताया कि या तो चुनाव क्षेत्र में नहीं थे अथवा बीमार थे।

हमने लोगों से यह भी पूछा कि उन्होंने किस पार्टी अथवा उम्मीदवार को वोट दिया। 36 प्रतिशत लोगों ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। शायद उनकी यह धारणा थी कि हम किसी सरकारी एजेंसी के लिये सूचनाएं एकत्रित कर रहे हैं। मगर जिन लोगों ने जबाव दिया, चुनाव परिणाम लगभग वैसे ही रहे।

वोट डालने के बारे में पूछे गये सवालों के जवाब से यह स्पष्ट हो जाता है कि आमतौर पर पश्चिम बंगाल की औसत ग्रामीण मतदाता को अपने संबन्धियों और मित्रों की राय की कोई खास परवाह नहीं थी। अधिकांश मतदाताओं ने युवा और शिक्षित उम्मीदवारों को अपना वोट देना पसन्द किया। आमतौर पर लोगों की यह आम राय थी कि राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों में व्यक्ति अपनी भूमिका निभा सकता है। पर अधिकांश लोग यह भी मानते थे कि जो राजनीतिक नेता सत्ता में हैं, उन्हें जनसाधारण की कोई खास परवाह नहीं और न ही सरकारी कर्मचारी लोगों की जरुरतों और उनकी तकलीफों के प्रति सजग हैं। अधिकांश लोग अपने को सत्ता से कटा हुआ जरुर महसूस करते थे। पर उनका यह कहना नहीं था कि स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा। 90 प्रतिशत लोग यह मानने को तैयार नहीं थे कि हम वोट डालें-न-डालें क्या फर्क पड़ता है। 14 वर्षों के बाद चुनाव कराये जाने के बावजूद लोग चुनाव प्रक्रिया की स्थिति में सुधार लाने का सशक्त माध्यम मानते हैं और चुनाव में जो भारी मतदान हुआ यह उनकी इसी धारणा का परिचायक है।

राजनीतिक दलों के आधार पर पचायती राज संगठनों के चुनाव के बारे में बहुत से लोगों का कहना था कि

लोकसभा और विधान सभा चुनाव के लिये भले ही राजनीतिक दल अधिक महत्वपूर्ण हों, मगर पंचायती राज चुनाव में तो उम्मीदवारों का ही अधिक महत्व है। 47 प्रतिशत लोग उनके इस बात से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि राजनीतिक दलों को अच्छे उम्मीदवार खड़े करने चाहिये। लोगों ने नैतिक आचरण पर विशेष महत्व दिया। उनका कहना था कि अगर उम्मीदवार अच्छे नहीं हुए तो उनका काम भी अच्छा नहीं होगा दूसरी ओर लोगों की यह राय भी थी कि निर्दलीय उम्मीदवार भले ही अच्छे हों, राजनीतिक संगठन के अभाव में वे अधिक कारगर सिद्ध नहीं होंगे।

चुनाव परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों के मतदाता कितने सजग हैं। चुनाव जीतने वाले उम्मीदवारों में आधे से अधिक अर्थात 50 प्रतिशत 21 से 35 आयु वर्ग के हैं। 31 प्रतिशत ऐसे हैं जो 35 से 45 वर्ष की आयु के हैं। 46 से अधिक आयु वर्ग में केवल 18 प्रतिशत हैं। मतदाताओं ने शिक्षा के महत्व को भी पूरी तरह स्वीकार किया। ऐसा एक भी उम्मीदवार नहीं जीता जो निरक्षर था। हायर सेकेण्डरी तक पढ़े वर्ग में आने वाले सफल उम्मीदवारों का अनुपात 47 प्रतिशत रहा और स्नातक अथवा स्नातकोत्तर उम्मीदवारों का 22 प्रतिशत। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त उम्मीदवारों का अनुपात 11 प्रतिशत रहा। पेशे की दृष्टि से 47 प्रतिशत सफल उम्मीदवार खेती करने वाले थे 24 प्रतिशत ऐसे लोग थे जो शिक्षक, डाक्टर या ऐसे ही अन्य व्यवसायों में थे। व्यापारी वर्ग का अनुपात 22 प्रतिशत रहा।

पश्चिम बंगाल में पंचायती राज चुनावों का यह विश्लेषण हमारे लिये बहुत शिक्षाप्रद है। इससे हमें पता चलता है कि पंचायती राज संगठन और उनके लिये चुनाव प्रक्रिया ग्रामीण क्षेत्रों के आधुनिककीरण और उनके सर्वांगीण विकास में बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है।□

प्रस्तुति–श्रीमती सरोज कश्यप
एस-IV/551,
आर.के. पुरम, नई दिल्ली-22

लोकतंत्र की बुनियाद -पंचायती राज

भारत में पंच और पंचायतें इतिहास के झुटपुटे से चली आ रही हैं। लेकिन पंचायती राज एक नई परिकल्पना है और वह भी स्वाधीन भारत के उस ग्राम्य लोकतंत्र की, जिसका परीक्षण-प्रयोग कई राज्यों में किया गया है। वैसे पंचायती राज का प्रेरणा स्रोत और मूल उद्गम स्थल हमारी पंचायत प्रणाली ही है जिसमें ग्रामवासी चौपाल पर बैठकर न केवल स्थानीय विवादों का निपटारा करते हैं बल्कि गांवों का रूप-स्वरूप निखारने के लिए विभिन्न विकास कार्य हाथ में लेने पर सोच-विचार करते हैं। मतभेद उत्पन्न होने पर अंतिम निर्णय ग्रामीणों के चुने हुए प्रतिनिधि यानि पंच करते हैं। इन पंचों का मुखिया सरपंच होता है। प्रत्येक कार्य को सर्वसम्मति या आम सहमति से करनेके कारण ही हमारे गांव नन्हें-गणराज्य कहलाते आए हैं। इस सहकारी और सामूहिक जीवन पद्धति पर ब्रिटिश शासन काल में सीधा प्रहार किया गया। जमींदारी प्रथा काश्तकारी की रैयतवाड़ी प्रणाली और लगान वसूली की निर्दयतापूर्ण पद्धति के जरिए ब्रिटिश सरकार ने भारत के इन प्राचीन लघु-गणराज्यों को एक तरह से नष्ट कर दिया और उनके समष्टि जीवन पर जानलेवा प्रहार किया। गांधीजी ने स्वाधीनता संग्राम के दौरान जिस रामराज की परिकल्पना की, उसमें और बातों के साथ–साथ पंचायतों और पंचायत प्रणाली की पुनर्स्थापना करते हुए उन्हें आत्म-निर्भर बनाने पर जोर दिया गया। वह गांव को खुशहाल तथा उसकी देखभाल के लिए मजबूत पंचायतों को देखना चाहते थे। हमारे संविधान का अनुच्छेद 40 इसी गांधीवादी दर्शन को मूर्त रूप देने का प्रयास है।

इसके एक निदेशक सिद्धान्त में कहा गया है कि स्वशासन की इकाइयों के रूप में गांव पंचायतों का गठन करना राज्य का कर्तव्य है। समुदाय गण अथवा समूह की भावना को आगे बढ़ाने के लिए गांवों में कृषि, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज सेवा, मकान निर्माण, ग्रामीण उद्यमों आदि विभिन्न कार्यों के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम 1952 में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के उद्घाटन के ठीक एक वर्ष बाद दो अक्तूबर 1953 को राष्ट्रीय विस्तार सेवा आरंभ की गई। सामुदायिक विकास का कार्यक्रम सघन कार्यक्रम था और इसके अंतर्गत आरंभ किए गए कार्य तीन वर्षों के लिए थे, जबकि राष्ट्रीय विस्तार सेवा, कम सघन योजना थी, लेकिन इसे अपेक्षाकृत कम समय में सारे देश में लागू किया जाना था। यह काम बहुत बड़ा था और इससे स्थानीय लोगों को जोड़े बिना और स्थानीय नेतृत्व तैयार किए बिना इसके देशभर में सफलतापूर्वक लागू होने का सवाल ही नहीं था। स्थानीय लोगों की इच्छाओं, अभिलाषाओं, आवश्यकताओं और अपेक्षाओं से अनभिज्ञ सरकारी कर्मचारियों और नौकरशाही से यह आशा करना भी व्यर्थ था। इन कार्यक्रमों की इस कमी को दूर करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में स्वायतशासी संस्थाएं स्थापित की गईं। इन्हें ही 1959 से पंचायती राज संस्थाओं का नाम दिया गया। असल में इन दो कार्यक्रमों की त्रुटियों के अध्ययन के लिए गठित बलवंतराय मेहता समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया था। इसकी रिपोर्ट में ग्राम स्तर पर पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद बनाने और इन सभी को परस्पर गहरा जोड़ने की सिफारिश की गई थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि सामुदायिक परियोजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अंतर्गत कामों के मंथरगति से बढ़ने का कारण यह है कि ये सरकारी मशीनरी पर निर्भर हैं। यह निर्भरता पंचायती राज से दूर हो जायेगी।

केन्द्रीकृत प्रशासन और अर्थतंत्र के उल्टे पिरामिड को सीधा कर उसे अपने असली आधार पर लगाने और जमाने का प्रश्न है। इसमें प्रशासन नीचे गांवों से आरंभ होकर सभी सीढ़ियों-सोपानों को पार करता हुआ केंद्र तक पहुंचेगा। यह जिले तक पहुंचकर समाप्त नहीं होगी बल्कि नई दिल्ली तक जायेगी। पंचायती राज का मूल ढांचा ग्राम सभाओं पर खड़ा

होगा। प्रत्येक ग्राम सभा में गांव के सभी व्यक्ति शामिल होंगे। इसी बुनियादी सामुदायिक धरातल पर सीधा अथवा प्रत्यक्ष लोकतंत्र कायम होगा क्योंकि इसमें गांव के अधिकतम व्यक्तियों की भागीदारी व्यावहारिक हो सकेगी। ग्राम पंचायत गांव की कार्यपालिका होगी। यहीं से ईंट दर ईंट ऊंचा चढ़ते हुए ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियों के लिए प्रतिनिधि चुनेगी और पंचायत समितियां जिला परिषदों के लिए। प्रत्येक चरण की सरकार के अधिकार और कर्तव्य उसके स्तर के अनुसार निर्धारित होंगे। यह रूपरेखा निर्धारित हो जाने के बावजूद इस उर्ध्वगामी लोकतंत्र के सफलता के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर की पंचायती राज संस्थाओं के अधिकार और कर्तव्य साफ-साफ निश्चित कर दिए जाएं, और कहीं भी सन्देह या परस्पर टकराव की कोई शंका-आशंका न रहे।

पहली पंचवर्षीय योजना में यह निर्धारित कर दिया गया था कि देहाती इलाकों में पंचायतों को क्या काम सौंपे जायेंगे। बलवंतराय मेहता अध्ययन दल ने भी सिफारिश की थी कि गांव पंचायत को ये ग्यारह काम सौंपे जाए। इसके अलावा गांव पंचायतों को पंचायत समितियों के एजेन्ट के रूप में विकास योजनाओं अथवा अन्य कार्य लागू करने का काम सौंपा गया। विभिन्न राज्यों के पंचायती राज कानूनों के अंतर्गत गांव पंचायतों को जो अधिकार और काम सौंपे गए हैं, उनमें यहां-वहां भिन्नता जरूर है। लेकिन इस बारे में व्यापक सहमति है कि पंचायतों को अपने सामान्य नागरीय काम करने के अलावा गांवों के सामाजिक-आर्थिक विकास से सक्रिय रूप से जोड़ा जाए। वे न केवल पंचायत समितियों या जिला परिषदों को ऐजन्सियों के रूप में काम करें बल्कि अपने विकास कार्यक्रमों विशेषकर कृषि कार्यक्रमों की रूपरेखा स्वयं तैयार कर स्वयं ही उन्हें लागू करें।

लेकिन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने जिलाधीशों/कलेक्टरों के साथ विभिन्न कार्यशालाओं में वित्तीय और प्रशासनिक अधिकारों के विकेंद्रीकरण तथा ज़िलों और उसके नीचे के स्तरों की आयोजना एवं पंचायती राज में जनता की भागीदारी के श्रेष्ठ विचारों को सक्षम रूप से मूर्त रूप देने का निर्णय किया है। उन्होंने बलवंत राय मेहता ही नहीं बल्कि डी.आर. गाडगिल, बी.एस. मिन्हास और सुब्रहमण्यम के विचारों पर पड़ी धूल की मोटी परतों को हटाकर उन्हें गुमनामी के अंधेरे से फिर खुले प्रकाश में ला खड़ा किया है। अब राज्य सरकारें, जिला योजनाओं में अड़ंगा न लगा सकें और पंचायती राज संस्थाएं सही माने में सुदृढ़ हो सकें — इसके लिए कांग्रेस (आई) संसदीय दल ने गांव, ताल्लुका और जिला स्तरों पर तीन चरणों वाले स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थाई रूप से स्थापना के लिए संवैधानिक संशोधन का प्रस्ताव किया है। इसी की पुष्टि करते हुए गत 25 नवम्बर को प्रधानमंत्री ने बिहार के पहले मुख्यमंत्री स्वर्गीय श्री कृष्ण सिंहा के जन्म शताब्दी समापन समारोह के अवसर पर बरबीघा में शेखपुरा की एक जन-सभा में स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि गांव स्तर तक सत्ता के विकेंद्रीकरण के लिए जल्दी से संविधान में संशोधन किया जायेगा। सरकार आठवीं पंचवर्षीय योजना की नयी रूपरेखा निचले स्तरों से बनायेगी। अभी भले ही पंचायत अथवा खंड स्तरों पर योजना की रूपरेखा तैयार करना संभव न हो, तो भी आठवीं योजना को ज़िला स्तर पर बनाने के लिए सरकार कृत संकल्प है। इस सबका अंतिम लक्ष्य सत्ता पंचों और पंचायतों को सौंपना है। अगर लोकतंत्र नीचे के स्तर पर मजबूत हो गया तो ऊपर स्वतः ही मजबूत होता चला जायेगा। पंचायती राज हमारे लोकतंत्र की मूल बुनियाद है। निस्सन्देह संवैधानिक संशोधन कर देने से पंचायती राज संस्थाओं को कानून और संविधान दोनों की दृष्टियों से पक्की मान्यता मिल जायेगी। तब कोई भी राज्य इन से मनमानी खिलवाड़ नहीं कर सकेगा। लेकिन पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुए बिना यह मान्यता खोखली अथवा औपचारिक बनकर रह जायेगी। इसी कमी को दूर करने के लिए तथा इन लोकतांत्रिक संस्थाओं के वित्तीय साधन जुटाने के लिए प्रत्येक राज्य में एक वित्तीय-आयोग बनाने का सुझाव दिया गया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता मिलने, उनके लिए यथेष्ट वित्तीय साधन जुटाने तथा नियमित रूप से चुनाव होने के साथ-साथ अधिकारों के स्पष्ट निर्धारण और हस्तांतरण से ग्रामीण भारत में सही मानों में लोकतंत्र की मजबूत नींव पड़ जायेगी। वैसे भी देश की 70 प्रतिशत आबादी गांवों में बसती है। अगर गांव में पंचायती राज सार्थक और सफल हो गया तो सारे देश में स्थाई रूप से लोकतंत्र का भव्य भवन खड़ा करने में बहुत सम्बल, सहारा और प्रेरणा मिलेगी।

वेद प्रकाश अरोड़ा
268, सत्य निकेतन
मोती बाग, नानकपुरा, नई दिल्ली–110021

ग्राम पंचायत का प्राथमिक उद्देश्य एक ओर तो बुनियादी स्तर पर प्रजातांत्रिक ढांचे को मजबूत बनाना है और दूसरी ओर लोगों को अधिकार और साथ ही उत्तरदायित्व सौंपना है ताकि वे बेहतर ढंग से अपने कार्य कर सकें ।

8·2·59

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित